प्रभात

इस अंक में .....

★ कोक-पेप्सी को मार भगाएं ... 6
★ 'गांव बंदी' - पुलिसिया दमन के स्वरूपों में से एक ... 9
★ जंगलों का बचाव - एक विकल्प ... 12
★ अमेरिकी रोड मैप पर ... 15
★ इराकी जनता के प्रतिरोधी संघर्ष पर ... 22
★ चन्द्रबाबू पर पीजीए का हमला ... 27
★ श्रद्धांजलि... 30

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) [पीपुल्स वार] दण्डकारण्य स्पेशल ज़ोनल कमेटी का तिमाही मुख-पत्र

वर्ष - 16 अंक - 4 अक्टूबर-दिसम्बर 2003 सहयोग राशि - 10 रुपए

छत्तीसगढ़ में जनता के असन्तोष का फायदा उठाकर सत्तारूढ़ हुई भाजपा की साम्प्रदायकितावादी और जन-विरोधी नीतियों का पलटकर जवाब दो!

जनता की सरकार के निर्माण में आगे बढ़ो !

देश के पांच राज्यों में चुनाव का हंगामा खत्म हुआ। दिल्ली को छोड़कर तीन राज्यों – राजस्थान, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ – में कांग्रेस की सत्ता का पतन हो गया। इन राज्यों की सरकारों की पिछले पांच सालों की नाकामयाबियों का फायदा उठाकर विपक्षी भाजपा ने कुर्सी छीन ली। देश के पिछले 15-20 सालों के राजनीतिक रुझान पर नजर डाली जाए, तो यह जान पड़ता है कि आमतौर पर जनता पांच सालों तक राज करने वाली पार्टियों को दोबारा नहीं चुन रही है। इसी को आमतौर पर व्यवस्था विरोधी वोट या नकारात्मक वोट की संज्ञा दी जा रही है। लेकिन कभी-कभार बार ऐसा भी हो रहा है कि जहां विपक्ष कमजोर हो और उसमें फूट हो, वहां सत्तारूढ़ पार्टी ही दुबारा चुनाव जीत पा रही है। दिल्ली के चुनावी परिणाम इसका एक ताजा उदाहरण है। मार्क्सवाद के महान शिक्षकों ने 150 साल पहले ही कहा था कि चुनाव का मतलब शोषक वर्गों में से किसी एक गिरोह को पांच सालों तक लूटने का मौका देना ही है। उनका यह कथन बार-बार आज भी सही साबित हो रहा है। इतने सालों से कांग्रेस के शासन में लुट चुकी जनता को अब से भाजपा शासन में अपना भाग्य आजमाना होगा। लेकिन याद रहे कि 1993 में जनता ने भाजपा शासन से तंग आकर ही कांग्रेस को सत्ता में लाया था। अब कांग्रेस को हटा भाजपा आ गई।

1 नवम्बर 2000 को छत्तीसगढ़ राज्य का गठन हुआ। तब से इन तीन सालों में जनता की समस्याओं को हल करने में तथा जनता की उम्मीदों पर खरी उतरने में सरकार बुरी तरह विफल हो गई थी। उस पर राज्य के सभी तबकों की जनता का भरोसा टूट चुका था। जनता के हितों को नुकसान पहुंचाते हुए उसने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के फायदे के लिए राज्य के असीम प्राकृतिक संसाधनों को लुटाया। बेरोजगारी की समस्या दूर हो जाने का सपना देखने वाले युवाओं को निराशा ही हाथ लगी। 'धान का कटोरा' कहलाने वाले इस प्रदेश के किसानों की पेट की खातिर पलायन करने की बदहाली में नए राज्य के अन्तर्गत भी कोई बदलाव नहीं आया। खेतों के लिए सिंचाई का पानी, गर्मियों के दौरान गांवों में पीने का पानी, समर्थन मूल्य के अभाव के चलते किसानों में बढ़ती आत्महत्याओं की प्रवृत्ति, कंदमूल खाकर जीने को मजबूर आदिवासियों की बदहाली – आदि शोषित लोगों की समस्याओं में न तो नए राज्य से न ही 'आदिवासी' मुख्यमंत्री से कोई कमी आई। बड़ी संख्या में मजदूरों को नौकरियां गंवानी पड़ीं। निजीकरण सरकार का एक मात्र मंत्र बन गया। अपनी मांगों को लेकर सड़कों पर उतर आए 28 हजार शिक्षा कर्मियों को सरकार ने नौकरी से बरखास्त करने की धमकी दे डाली। शहरों में शांति और व्यवस्था की स्थिति बदतर होने से लोगों को बेहद असुरक्षा के माहौल में जीना पड़ रहा है। नए राज्य में लोगों की किसी एक भी मूलभूत समस्या का समाधान न हो सका। इसलिए लोगों ने जोगी सरकार को सबक सिखा दिया। अपने वोट से उसे गद्दी से उतार दिया। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं निकलता कि उन्होंने इस उम्मीद से यह बदलाव किया है कि भाजपा के आने से इन हालात में बड़ा बदलाव आ सकता है। सत्ता में बैठी अक्षम सरकार को हटाने का क्रान्तिकारी विकल्प को नहीं समझ पाने के कारण ही उन्होंने एक दूसरी लुटेरी पार्टी को वोट डाला। इसी को नकारात्मक वोट कहा जा रहा है। बहुत संभव है कि पांच साल बाद भाजपा भी ठीक इसी हालत में होगी जिसमें अब कांग्रेस है। ऐसे में कल

14वीं लोकसभा के झूठे चुनावों का बहिष्कार करो !

नव जनवादी क्रान्ति ही देशवासियों का एक मात्र विकल्प है !

के दिन व्यापक जनता को यह समझ पाने में कोई दिक्कत नहीं होगी कि नकारात्मक वोट से भी किसी मूलभूत समस्या का समाधान नहीं होगा। छत्तीसगढ़ की जनता, पूरे देश की जनता दण्डकारण्य के लोगों का रास्ता जरूर अपनाएगी। वह समझ लेगी कि संघर्ष के जरिए जन सरकार को चुनने के अलावा कोई चारा भी नहीं है।

अरसे से देशवासियों पर सामंतवाद, दलाल पूंजीवाद और साम्राज्यवाद – इन तीन पहाड़ों का बोझ लदा हुआ है जो साल-दर-साल बढ़ ही रहा है। इन तीनों दुश्मनों के रोज-रोज गहराते संकट का बोझ सीधे तौर पर जनता पर ही बढ़ रहा है। पिछले 55 सालों से हो रहे चुनावों से इस बोझ में कोई राहत भी नहीं मिल रही है। चुनाव में जो भी पार्टी जीतकर सत्ता की बागडोर अपने हाथों में ले रही है वो सब लुटेरे वर्गों की पार्टियां ही हैं। इनमें अगर कोई फर्क है तो सिर्फ उनकी झण्डियों के रंग में, पार्टियों के नाम में, भाषण के ढंग में और उन्माद फैलाने के अंदाज में ही। पर 'विकास' की रट लगाते हुए विदेशों से कर्ज लाने में, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के सामने घुटने टेककर साम्राज्यवादियों के हितों को पूरा करने में तथा सामंती व दलाल पूंजीपतियों के हितों की हिफाजत करने में कोई फर्क नहीं है – बल्कि यह कहना चाहिए कि इस मामले में वे एक-दूसरे को पछाड़ने की कोशिश करती हैं।

नए-नवेले राज्य छत्तीसगढ़ में पहली बार विधानसभा का चुनाव सम्पन्न हुआ है। इस चुनाव के लिए अभूतपूर्व स्तर पर सुरक्षा का बंदोबस्त किया गया। राज्य के 16 में से 7 जिलों को नक्सल प्रभावित घोषित करके हजारों की संख्या में पुलिस व अर्ध सैनिक बलों को तैनात किया गया। यहां पर करीब 60 हजार पुलिस व अर्ध सैनिक बलों को तैनात किया गया है जोकि दिल्ली, राजस्थान और मध्यप्रदेश राज्यों से कई गुणा ज्यादा है। भारतीय सेना के 35 हेलिकॉप्टरों से आसमान से निरन्तर गश्त लगाई गई। इलेक्ट्रानिक वोटिंग मशीनों से मतदाताओं को लुभाने की विफल कोशिश की गई। हाइ-टेक प्रचार से मतदाताओं पर जैसे युद्ध ही चलाया गया। पर्यवेक्षकों का अनुमान है कि बड़ी पार्टियों की एक-एक उम्मीदवार ने चुनाव जीतने के लिए कम से कम एक करोड़ रुपए खर्चे हैं। तरह-तरह के वायदों, प्रलोभनों, आशाओं और आकर्षणों से बड़ी पार्टियों के राजनीतिक नेताओं ने मतदाताओं को लुभाने की भरसक कोशिश की। शराब और बाहुबल के जरिए मतों को खरीदने के लिए कई पापड़ बेले। बाजार में उपलब्ध चीजों पर इन पार्टियों ने अपने-अपने रंग लगा दिए ताकि मतदाताओं को लुभाया जा सके। स्कूली छात्रों को भी इस घिनौने खेल से नहीं बख्शा गया। उनके बस्तों पर भी नेताओं के चित्र और पार्टियों के नारे छापे गए, इससे यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि चुनाव प्रचार किस स्तर पर हुआ होगा।

इस चुनाव के प्रचार में धर्म ने एक विशेष भूमिका अदा की। सत्तारूढ़ कांग्रेस और विपक्षी भाजपा – दोनों ने ही धार्मिक प्रचार में एक-दूसरे से जैसे होड़ ही लगाई। प्रायः सभी राज्यों में यही हुआ। छत्तीसगढ़ सरकार ने मंदिरों के निर्माण के लिए लाखों रुपए आवंटित किए। अन्य तरीकों में भी उसने धार्मिक उन्माद फैलाया। दूसरी ओर पिछले कुछ सालों से भाजपा अविभाजित मध्यप्रदेश में कई धार्मिक कट्टरतावादी हरकतें करती चली आ रही है। अविभाजित मध्यप्रदेश हो या फिर मौजूदा छत्तीसगढ़, ये दोनों ही आदिवासी बहुल राज्य हैं। आदिवासियों का न तो 'हिन्दुत्व' से न ही 'ईसाई' से कोई लेना-देना है। संघ परिवार यह कहते हुए कि इन्हें हिन्दू से ईसाई बनाया गया था, अब 'घर वापसी' के नाम से 'हिन्दू' बनाने की साजिश पर पिछले कई सालों से अमल कर रहा है। इस अमानवीय काम में सबसे बुरा खलनायक था दिलीप सिंह जूदेव। इसने इस चुनाव में भाजपा का नेतृत्व करते हुए अपने अंदाज में धार्मिक उन्माद भड़काया। ऊपरी तौर पर विकास का राग चाहे जितने जोर से क्यों न आलापा गया हो, लेकिन वास्तव में इन्होंने 'हिन्दुत्व' को नहीं छोड़ा। हिन्दू वोट बैंक पर कब्जा करने के लिए जीतोड़ प्रयास किया।

इस चुनाव के दौरान कई घोटाले उजागर हुए। राज्य और केन्द्र सरकार के मंत्रियों को लोगों ने रिश्वत लेते हुए टीवी पर देखा। पैसे के लालच में राजनीतिक नेताओं के दूसरी पार्टी के हाथों बिक जाने की कई घटनाएं सामने आईं। घोटाले में लिप्तता के चलते जूदेव को मुख्यमंत्री पद की दावेदारी से भी पीछे हटना पड़ा। चुनाव के नतीजे अभी पूरी तरह उजागर ही नहीं हुए कि जोगी टेप काण्ड वाला घोटाला उजागर हुआ। भाजपा विधायकों को लाखों रुपए रिश्वत की पेशकश करने के आरोप में जोगी को मुख्यमंत्री पद से ही नहीं बल्कि कांग्रेस पार्टी से भी बोरिया-बिस्तर समेटना पड़ा। इन घोटालों और दलबदलों से यह साफ समझ पड़ता है कि शासक वर्गों के बीच सत्ता को लेकर कितने घिनौने प्रकार के झगड़े होते हैं।

इस चुनाव में जुल्म, जबर्दस्ती, प्रलोभन, खरीद-फरोख्त, धार्मिक उन्माद भड़काने आदि के अलावा यहां तैनात हजारों खाकी बलों ने युद्ध जैसा जो माहौल तैयार किया वह काफी भयावह था। कथित तौर पर नक्सल प्रभावित इलाकों में इस बार इतनी संख्या में पुलिस बलों को तैनात किया गया है कि ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। यहां बड़े पैमाने पर मतदान में धांधलियां करके प्रतिशत में हेराफेरियां करके यह दुष्प्रचार किया गया कि नक्सलवादियों के चुनाव बहिष्कार के आह्वान का लोगों ने ठुकरा दिया और जनता ने अपने मताधिकार का इच्छापूर्वक उपयोग किया। खासकर भाजपा तो शुरू से ही नक्सलावाद को मुख्य मुद्दा बनाकर क्रान्तिकारी आन्दोलन के खिलाफ काफी दुष्प्रचार किया। सभी भाजपा नेताओं ने राज्य में नक्सलवाद को मुख्य समस्या बताया। जगदलपुर में अभूतपूर्व सुरक्षा व्यवस्था के बीच भाषण देते हुए प्रधानमंत्री वाजपेयी भी नक्सलवाद का मुद्दा उठाने से खुद को नहीं रोक पाया। यहां पर चुनाव प्रचार नक्सलवाद के उन्मूलन के प्रचार के रूप में ही हुआ है। चुनाव नजदीक आने के बाद तो पुलिस व अर्ध सैनिक बलों द्वारा मचाया गया आतंक की तो कोई सीमा ही नहीं रह गई थी। मारपीट, हत्याएं, गोलाबारी, धमकियां, जोर-जबर्दस्ती आदि से लोगों को सांस लेने का मौका भी नहीं दिया गया। आखिरी सप्ताह में बस्तर कश्मीर जैसा नजर आने लगा। यहां दो शत्रु देशों के बीच युद्ध जैसा माहौल निर्मित किया गया। यहां पर लोकतांत्रिक ढंग से चुनाव कराने का प्रयास नहीं, बल्कि नक्सलवाद के उन्मूलन अभियान ही चलाया गया। गांवों में जो भी मिला, उसके साथ मारपीट करना पुलिस के लिए जैसे रोजमर्रा का काम हो गया। नक्सलवादी बताकर कुछ बेकसूर किसानों की भी हत्या कर दी गई। खुद डीआईजी संत कुमार पाश्वान ने बयान दिया कि पुलिस वालों की कार्रवाइयों में करीब

तीन दर्जन 'नक्सलवादी' मारे जाने की संभावना है। इस बयान से यहां पर पुलिस द्वारा बरते गए आतंक का अंदाजा लगाया जा सकता है। कांकेर जिले के जिरंतराय गांव में अपने खेत में काम कर रहे दो बेकसूर किसानों को मारकर सीआरपी बलों ने उन्हें नक्सलवादी घोषित किया – यह यहां पर मचाए गए आतंक का एक सबूत ही है। संसदीय जनतंत्र का मूलाधार कहलाने वाले चुनाव में बेकसूर आदिवासियों को अपने मताधिकार का प्रयोग करने के लिए किस प्रकार युद्ध जैसा माहौल झेलना पड़ा है, यह इन उदाहरणों से समझा जा सकता है। बन्दूक के बल पर इन लोगों के चुनाव बहिष्कार के अधिकार को कुचल दिया गया। दो ईंच मोर्टार शेल (गोलों) से यहां पर 'लोकतंत्र' की लाज बचाने की घिनौनी कोशिश की गई।

सभी राजनीतिक पार्टियों ने अपने घोषणा-पत्रों में वही खोखले वायदे किए जो वे पिछले 50 सालों से करती आ रही हैं। किसी एक भी पार्टी ने जनता को यह बताने की जहमत नहीं उठाई कि क्यों कर उन्होंने इतने लम्बे सालों से जनता की एक भी बुनियादी समस्या का समाधान नहीं किया। पिछले 50 सालों में इस व्यवस्था को और ज्यादा बिगाड़ने के जुर्म में जिन पार्टियों को कटघरे में खड़ा करना चाहिए, वही पार्टियां बार-बार और शर्म-हया छोड़कर जनता के सामने आ रही हैं ताकि उन्हें फिर से सत्ता का सुख भोगने का मौका दिया जाए। रोज-रोज बढ़ती महंगाई; साल-दर-साल बढ़ती बेरोजगारों की संख्या; शिक्षा, चिकित्सा, पीने का पानी, मकान जैसी जनता की मूलभूत समस्याओं का समाधान नहीं हो पाना; भूखमरी, जमीन की कमी, आदिवासियों को वन भूमि से भगाने का सरकार का फैसला आदि अनेक समस्याएं इस व्यवस्था के आम लक्षण जैसे बन गईं। पिछले 15 सालों से केन्द्र व राज्य सरकारें जो नई आर्थिक नीतियां लागू कर रही हैं, उनके परिणामस्वरूप सभी क्षेत्रों में जनता की स्थिति बदतर होती जा रही है। साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण के तहत जारी निजीकरण व उदारीकरण के परिणामस्वरूप मजदूर, किसान, कर्मचारी, छात्र, बुद्धिजीवी, महिला, आदिवासी – हर तबके और हर समूह के लोग परेशान हैं। इस संकट के मारे कई लोग हताशा के चलते आत्महत्या की शरण ले रहे हैं। ये सारे परिणाम इस सड़ी-गली व्यवस्था के दीर्घकालिक रोग हैं। जबकि शोषित जनता इतनी सारी समस्याओं से परेशान है तो चुनावी पार्टियां तो विकास की रट लगाना बन्द करने का नाम ही नहीं ले रही हैं। वे असल में जनता को यह स्पष्ट नहीं कर रही हैं कि विकास का मतलब क्या है। सड़कें बनाना, उद्योग खोलना, बिजली आपूर्ति बढ़ाना आदि कुछेक समस्याओं को ये पार्टियां भले ही उठा रही हैं, पर इस पर गौर करना जरूरी है कि इससे अब तक किन लोगों का विकास हुआ है। इनके विकास से किन लोगों को फायदा होगा, यह भी वे बताने से कतरा रही हैं। नगरनार स्टील प्लान्ट खोलने से, बाल्को का निजीकरण करने से, शिवनाथ नदी का पानी बेचने से, बहुराष्ट्रीय कम्पनी सिंजेंटा को बीज बेचने की नाकाम कोशिश से, कुकरमुत्तों की तरह पनपे निजी कॉलजों और विश्वविद्यालयों से, गली-गली में नजर आने वाली हाइ-टेक अस्पतालों से किसे फायदा हुआ है और किसे होगा, यह जनता अच्छी तरह समझ रही है। विकास के नाम पर विदेशों से बड़े पैमाने पर कर्ज लाकर सड़कें बनाने और रेल लाइनें बिछाने से किसका फायदा होता रहा, इसे अलग से बताने की जरूरत ही अब नहीं है। पिछले 30 सालों से जनता यह समझने लग गई कि यहां पर जो भी सड़क या रेल लाइन बनी, वह सिर्फ साम्राज्यवादी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को यहां के संसाधनों को लूटने का मौका देने के लिए ही बनी है। इससे साफ समझ पड़ता है कि ये पार्टियां जिस 'विकास' की बात कर रही हैं, वह लुटेरे वर्गों का विकास ही है। यह विकास गरीब लोगों को अंधाधुंध लूटकर ही सम्भव हो पा रहा है।

अब सत्ता की बागडोर अपने हाथों में लिए हुए भाजपा मुख्यमंत्री रमण सिंह क्या इसके विपरीत कर सकता है? इसका सीधा जवाब है कुछ भी नहीं। रोज-रोज बढ़ रहे साम्राज्यवादी संकट से देश की आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था प्रभावित होती ही रहेगी और इस कारण से हालात और भी बदतर बन जाएंगे – ऐसा कहना ज्यादा सही रहेगा। क्योंकि –

1) भाजपा नेतृत्व वाली राजग सरकार साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण की नीतियों का हूबहू पालन करते हुए उन पर अमल कर रही है। दूसरे चरण के सुधारों के नाम पर वित्त मंत्री यशवन्त सिन्हा द्वारा घोषित नीतियों से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

2) साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण के तहत सरकार देशवासियों के विरोध का बिलकुल परवाह नहीं करते हुए, निर्धारित लक्ष्य के मुताबिक सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का निजीकरण कर रही है। उन्हें बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और दलाल पूंजीपतियों को औने-पौने दामों पर बेच रही है। इसके परिणामस्वरूप देश में छोटी व मध्यम श्रेणी के कई उद्योग बन्द पड़ रहे हैं। इनके मालिक और लाखों मजदूर सड़कों पर फेंक दिए जा रहे हैं।

3) डब्ल्यूटीओ से बाहर आने की देश के किसानों और अन्य जनता की मांग को भारत सरकार लगातार ठुकराती आ रही है। डब्ल्यूटीओ की नीतियों के तहत कुछ रियायतें पाने के लिए हाथ फैलाते हुए किसानों की जिन्दगी को विश्व बाजार में गिरवी रख रही है। इस स्थिति में किसान ठगा सा महसूस करके आत्महत्या कर रहे हैं। यह नई प्रवृत्ति तब से बढ़ रही है जबसे देश में नई आर्थिक नीतियों का अमल शुरू किया गया।

4) केन्द्र सरकार व सभी राज्य सरकारें जन कल्याण के कार्यक्रमों से पूरी तरह मुकर गई हैं। शिक्षा और चिकित्सा क्षेत्रों का लगभग पूरी तरह निजीकरण हो चुका है जिससे गरीब लोगों को इन सुविधाओं से वंचित होना पड़ रहा है।

5) निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों के अनुकूल ही देश की सर्वोच्च अदालत के फैसले आ रहे हैं। हाल ही में सर्वोच्च अदालत ने मजदूरों का हड़ताल का करने का अधिकार छीन लिया जिसे पाने के लिए मजदूरों ने अनगिनत संघर्ष किए थे और अनमोल कुरबानियां दी थीं।

6) केन्द्रीय व राज्य स्तर पर आए दिन नए-नए और बड़े-बड़े घोटाले उजागर हो रहे हैं। हाल ही में उजागर हुए अब्दुल करीम तेलगी के 33 हजार करोड़ रुपए के स्टाम्प पेपर घोटाले ने कई राज्यों को हिलाकर रख दिया है। एक दशक से ज्यादा समय से मंत्रियों और अफसरों ने सांठगांठ के

साथ जिस तरह इस महा घोटाले को अंजाम दिया, उसकी खबरें सुनकर लोगों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। गौरतलब है कि 1990 के बाद ही घोटालों के उजागर होने का सिलसिला भी बढ़ गया है।

7) देश में और दुनिया में भी लुटेरे शासक वर्गों को आज आतंकवाद ही एक मात्र समस्या बन गया है। विश्व जनता का नम्बर एक दुश्मन अमेरिका के नेतृत्व में इसके खिलाफ गठित अंतर्राष्ट्रीय गठबन्धन में कई देश शामिल होकर आतंकवाद को कुचलने के नाम पर अमेरिका के आदेशों का पालन कर रहे हैं। इसके अन्तर्गत हमारे देश में केन्द्र सरकार ने ऐसे 36 संगठनों पर प्रतिबन्ध लगाया है जो प्रगतिशील व क्रान्तिकारी हैं और जो अल्पसंख्यकों व आदिवासियों के हैं। आपातकाल के समय में एस्मा, बाद में टाडा और अब पोटा, जो बेहद खतरनाक है, कानून के तहत लोगों पर दमनचक्र चलाया जा रहा है। अपनी जिन्दगी को बेहतर बनाने के लिए संघर्ष कर रहे लोगों को कुचलने के लिए शासक वर्गों की पार्टियां निरंकुश कानून बनाने में लगी हुई हैं।

उपरोक्त परिस्थितियां देश में सामान्य बन गई हैं। ऐसी परिस्थितियों के पैदा होने के लिए शासक वर्ग ही जिम्मेदार हैं। तमाम बुर्जुवाई और संशोधनवादी पार्टियों का नेतृत्व यही लुटेरे वर्ग करते हैं। ऐसे में इन पार्टियों में चाहे किसी का भी शासन आए जनता की जिन्दगी में कोई तब्दीली नहीं आएगी।

इस बार भाजपा पूरे बहुमत के साथ सत्ता में आ गई। रमण सिंह मुख्यमंत्री बन गया। यह आदमी पिछले 30 सालों से संघ परिवार की मातृ संस्था आरएसएस में है। एक प्रचारक के रूप में, जनसंघ में और भाजपा में नेता के रूप में काम करके अब मुख्यमंत्री बन गया है। सत्ता में आते ही इसने हिन्दुत्ववादी नीतियों को आक्रमकता के साथ लागू करना शुरू किया। गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगाया। कानून और व्यवस्था को सुधारने की बात की। और पुलिस अमले का आधुनिकीकरण के लिए अपनी प्रतिबद्धता दोहराई। सड़क बनाने के काम में चाहे कितनी भी कठिनाइयां आए, पुलिस को बड़ी संख्या में तैनात करके पूरा करने का संकल्प व्यक्त किया। इसके अलावा रमण सिंह ने युवाओं को गुमराह करने के लिए बेरोजगारी भत्ता बढ़ाने, रोजगार की सब्जबाग दिखाने जैसी घोषणाएं भी कीं। किसानों की समस्याओं को हल करने और कृषि पर आधारित उद्योगों को शुरू करने जैसे खोखले वायदे तो करते ही जा रहा है। चुनाव के पहले से ही नक्सलवादियों को बेरहमी के साथ कुचलने की जरूरत पर जोर देने वाली भाजपा ने सत्ता की बागडोर संभालते ही जन आन्दोलन पर दमन तीखा करने की अपनी योजना स्पष्ट कर दी। बस्तर और सरगुजा इलाकों में स्थाई तौर पर सीआरपी बलों को तैनात करने की मंशा भी सरकार ने जाहिर की। काला कानून 'पोटा' को लागू करने के सम्बन्ध में रमण सिंह ने यह घोषणा की कि शीघ्र ही मंत्रीमण्डल की बैठक में इस पर फैसला लिया जाएगा। भाजपा सरकार द्वारा घोषित साल भर के कार्यक्रम पर गौर किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि आने वाले दिनों में हालात कांग्रेस के शासन के मुकाबले ज्यादा खराब हो जाएंगे। अगले साल लोकसभा के चुनाव के मद्देनजर भाजपा ने अपना 'मिशन 2004' जाहिर किया। उसे पूरा करने के लिए ही वह देश भर में सुनियोजित ढंग से काम कर रही है। लुटेरे शासक वर्गों की पार्टियां जो भी दिखावटी कदम उठाएंगे, उनसे जनता की कोई भी समस्या हल नहीं हो सकती। जनता को संघर्ष व प्रतिरोध के रास्ते से गुमराह करने के लिए ही सरकार अपने कार्यक्रम चलाती है ताकि जनता का शोषण बेरोकटोक जारी रखा जा सके। इसलिए इन कदमों का हमें विरोध करना चाहिए।

जनता के सामने विकल्प क्या है ?

पिछले 24 सालों से छत्तीसगढ़ के विशाल बस्तर इलाके की जनता झूठे चुनावों का बहिष्कार करते हुए अपनी बुनियादी समस्याओं के समाधान के लिए लुटेरे सरकार के खिलाफ लड़ती आ रही है। उनका यह संघर्ष क्रूर दमन का सामना करते हुए कई कुरबानियां देते हुए आगे बढ़ रहा है। शुरू में कई जन संगठनों में संगठित होने वाली जनता आज नव जनवाद की बुनियादी इकाइयों का चुनाव कर रही है। जनता अपनी इच्छा से, बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के अपने प्रतिनिधियों को चुनकर क्रान्तिकारी जन परिषद *(जनता ना सरकार)* का गठन कर रही है। यह चुनाव हर दो साल में एक बार हो रहा है। चुनाव की इस प्रक्रिया में सामंती और दुष्ट मुखियाओं को छोड़कर 100 फीसदी लोग भाग ले रहे हैं। यहां पैसा, प्रलोभन, धमकियां, झूठे वायदे जैसे चीजों को कोई जगह ही नहीं होगी। हर छह महीनों में एक बार मतदाताओं को लेकर विशेष आमसभा (ग्रामसभा) आयोजित की जाती है। इसमें जनता अपने प्रतिनिधियों के काम की खूबियों-खामियों का जायजा लेती है। जरूरत हो तो उनके खिलाफ आवश्यक कदम उठाने का अधिकार भी जनता को होगा। चुने गए प्रतिनिधियों में अगर कोई अक्षमता, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद जैसी गलतियों का शिकार बनता/ती है तो जनता उसे नकार देगी। बहुसंख्यक मतदाताओं के मतानुसार ही फैसले लिए जाते हैं। अतीत में कबीलों में मौजूद गणतांत्रिक शासन की पद्धति को ही और बेहतर बनाकर जनता अपना यह नया शासन चला रही है। इससे जनता में जनवादी चेतना बढ़ रही है।

पिछले साल जनता ने बुर्जुवाई व्यवस्था के सैकड़ों प्रतिनिधियों – सरपंच, जनपद सदस्य, जनपद अध्यक्ष आदि – से इस्तीफे दिलवाकर एक नया इतिहास रचा। ठीक एक साल बाद अब विधानसभा चुनाव सम्पन्न हुए। दन्तेवाड़ा जिले के मतदाताओं ने सिर्फ 35 प्रतिशत वोट डालकर यह ऐलान कर दिया कि इस लुटेरी व्यवस्था से हमें कोई लेना-देना ही नहीं है। इन 35 प्रतिशत वोटों में भी अधिकारियों और नेताओं द्वारा, खास तौर पर सुरक्षा बलों द्वारा जोर-जबर्दस्ती से और खुद ही बटन दबाकर डाले गए वोटों की संख्या ही ज्यादा होगी। अत्यधिक प्रतिशत लोगों ने चुनाव का बहिष्कार किया। ज्यादातर पुनर्मतदान बस्तर क्षेत्र में ही हुआ। और पुनर्मतदान पूरा धांधलियों से ही हुआ। निष्पक्ष चुनाव बस्तर में एक बकवास के अलावा कुछ भी नहीं है। चुनावी प्रतिशत को कृत्रिम रूप से बढ़ाया गया है, इसके कई प्रमाण दिए जा सकते हैं। सैकड़ों पुलिस बलों की तैनाती और ऊपर से हेलिकाप्टर की मदद से ही यहां के अधिकांश गांवों में चुनाव हो सका। अविभाजित बस्तर के पूरे 12 विधानसभा क्षेत्रों में अत्यधिक ग्रामीण लोगों ने चुनाव का बहिष्कार किया। इन सभी का 'स्पेशल जोनल कमेटी'

क्रान्तिकारी अभिनन्दन करती है। हम मानते हैं कि भारत की जनता के सामने एक आदर्शपूर्ण व क्रान्तिकारी विकल्प को पेश करने का श्रेय दण्डकारण्य की जनता को जाता है।

फिलहाल जनता अपने गांवों में क्रान्तिकारी जन परिषद की स्थापना कर रही है जोकि लुटेरे शासक वर्गों के गले नहीं उतर रहा है। लुटेरी सरकार जनता की इस नव जात सरकार की शुरू में ही हत्या करने की साजिश कर रही है। पड़ोसी राज्यों के साथ तालमेल के साथ बड़े पैमाने पर पुलिस बलों को उतारकर हमले करवा रही है। कश्मीर और पूर्वोत्तर के राष्ट्रीयता मुक्ति संघर्षों को जिस तरह कुचला जा रहा है, उसी प्रकार दण्डकारण्य के जन संघर्षों को भी कुचलने की योजनाएं बनाई जा रही हैं। इसके लिए सरकार ने साम्राज्यवादियों की कम तीव्रता के संघर्ष की रणनीति (low intensity conflict strategy) अपनाई है। यहां पर फासीवादी दमन को जारी रखने के लिए केन्द्रीय अर्ध सैनिक बलों को बड़ी संख्या में तैनात किया जा रहा है। पोटा कानून को जल्द ही अमल में लाने की कोशिश जारी है। चूंकि केन्द्र में भी भाजपा की ही सरकार है, इसलिए राज्य सरकार जो मांगे तत्काल देने के लिए केन्द्र तैयार है। इसके अलावा अपार प्राकृतिक संपदाओं से भरपूर छत्तीसगढ़ को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के चरागाह में बदलने के लिए सरकार प्रतिबद्ध है। खासकर बस्तर क्षेत्र को साम्राज्यवादी लूट का शिकारगाह बनाने की साजिश चल रही है। ऐसे में जनता के सामने दो ही रास्ते बचते हैं –

साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण की नीतियों को समर्पित सरकार का मुकाबला करते हुए अपने गांवों में अपना शासन खड़ा कर लिया जाए? या कठिन संघर्षों की बदौलत हासिल उपलब्धियों से हाथ धोकर लुटेरी नीतियों को मान लिया जाए?

इतिहास में कहीं भी जनता ने पहले रास्ते को ही चुन लिया है। अस्थाई तौर पर पेश आने वाली दमनात्मक परिस्थितियों का बहादुरी के साथ मुकाबला करते हुए अपना इतिहास खुद ही रचा है। दण्डकारण्य के लोगों को शानदार संघर्षों की विरासत प्राप्त है। इन्होंने ब्रितानी साम्राज्यवाद के खिलाफ जबर्दस्त विद्रोह करके अनमोल कुरबानियां देकर इतिहास में गौरवशाली अध्याय जोड़ा था। वीर गेन्दसिंह, गुण्डाधुर, बाबूराव सेडिमेक जैसे वीर योद्धाओं के वारिस हैं यहां के निवासी। पिछले 24 सालों से यह संघर्ष मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद की रोशनी में जनवादी क्रान्ति के तहत जारी है। दण्डकारण्य के लोगों के सामने अब अपनी सेना – जन छापामार सेना में अत्यधिक संख्या में भर्ती होकर जनयुद्ध को तेज करने के अलावा उनकी मुक्ति के लिए कोई दूसरा रास्ता नहीं है। झूठे चुनावों का रास्ता बेकार है। इलाकावार राजसत्ता पर कब्जा करते हुए आखिरकार पूरे देश में जनता की राजसत्ता कायम करना ही दण्डकारण्य की जनता के सामने, पूरे देश की जनता के सामने मौजूद एक मात्र सही रास्ता है। ✸

(.... पृष्ठ 11 का शेष)

ज्यादा भड़काया जाएगा। नवम्बर के तीसरे सप्ताह में भुवनेश्वर में सम्पन्न पुलिस के आला अफसरों की सम्मेलन में नौ राज्यों में 55 आदिवासी जिलों को नक्सलवादियों के दमन के लिए 3,475 करोड़ रुपए आवन्टित करने का निर्णय लिया गया। इसमें हरेक आदिवासी बहुल जिले को सालाना 15 करोड़ के हिसाब से आने वाले तीन सालों तक देने का प्रावधान है। इससे यह आभास मिल जाता है कि आने वाले दिनों में इस प्रकार के दमनकारी कदमों में कितना कुछ खर्च करने वाले हैं।

जनता को एकजुटता के साथ इन दमनकारी कार्यवाहियों को मात देनी चाहिए!

सरकारें और पुलिस शुरू से ही कई साजिशें करती चली आ रही हैं ताकि क्रान्तिकारी आन्दोलन को दबा दिया जा सके। करोड़ों रुपए का दुरुपयोग कर रही हैं। गांवों में उन ताकतों का समर्थन करने में जुटी हैं जिनका आधिपत्य क्रान्तिकारी आन्दोलन के चलते खत्म हो चुका है। जनयुद्ध पर चोट करने की मंशा से पुलिस जनता में फूट डालकर एक तबके को ऊपर उठाकर उनकी जगह में बिठाने की कोशिश कर रही है जिनका स्थान क्रान्तिकारी आन्दोलन के द्वारा पतन कर दिया गया था। 'गांव बन्दी' भी इन्हीं कोशिशों का हिस्सा है। लोगों को इसके बारे में अच्छी तरह से समझना होगा। शान्ति सेना, जन जागरण अभियान, नागरिक सुरक्षा समिति, वन संरक्षण समिति, सम्पत्ति संरक्षण समिति – पुलिस चाहे किसी भी नाम से इनका निर्माण करे इन सबका मकसद जनता को गुमराह करना ही है। इन सबके पीछे यही मंशा है कि क्रान्तिकारी आन्दोलन का किसी भी तरीके से सफाया कर दिया जाए। दण्डकारण्य की जनता को यह अनुभव पहले से ही है कि उसने अतीत में कई बार ऐसी साजिशों को विफल कर दिया। गड़चिरोली में सभापति बीरा वरसे के नेतृत्व में 1988 में शान्ति सेना के नाम से एक हथियारबन्द गिरोह ने सिर उठाया था। लेकिन जन मिलिशिया और जनता ने उसका जड़ से सफाया कर दिया। बस्तर में तत्कालीन विधायक महेन्द्र कर्मा द्वारा लाए गए जन जागरण अभियान को भी जनता ने पराजित कर दिया। आज जो जन विरोधी ताकतें फिर से सिर उठाने की कोशिश कर रही हैं, उन्हें जनता जरूर सबक सिखा देगी। पैसे के लालच में, पुलिस की शह पर गांवों में सिर उठा रही जन विरोधी ताकतों को बेरहमी के साथ कुचलना चाहिए। जन संगठनों, जनता की राजसत्ता के अंगों, जन मिलिशिया की अगुवाई में पीजीए की मदद से ऐसी दुष्ट ताकतों को परास्त करना चाहिए – सफाया करना चाहिए। पुलिस द्वारा दिए जा रहे इनामों को ठुकरा देना चाहिए और उसे कड़ा सबक सिखा देना चाहिए। ✸

➢ पाठकों से अपील

कुछ अनिवार्य कारणों से इस अंक (हिन्दी) के प्रकाशन-कार्य में काफी देरी हुई। इससे पाठकों को हुई असुविधा के लिए हमें अफसोस हैं। चुनाव बहिष्कार के कार्यक्रम के सम्बन्ध में विस्तृत रिपोर्टें भी हम इस अंक में शामिल नहीं कर पा रहे हैं। इन्हें हम अगले अंक में जरूर पेश करेंगे।

- सम्पादकमण्डल

सिर्फ कोक-पेप्सी को ही नहीं, तमाम बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को ही देश से खदेड़ दो !

5 अगस्त 2003 को दिल्ली स्थित 'सेन्टर फॉर साइंस एण्ड एन्विरॉनमेन्ट (सीएसई)' नामक एक गैर-सरकारी संस्था ने यह घोषणा की कि दिल्ली और उसके आसपास बिकने वाले शीतल पेयों (कोल्ड ड्रिंक्स) की जांच में चार खतरनाक कीटनाशक दवाओं के अवशेष पाए गए। इस खबर ने देश भर में खलबली मचा दी। इसके पहले भी मिनरल वाटर के प्रदूषित होने और कुछ प्रमुख कम्पनियों के उत्पादों में विनाशकारी तत्व होने की खबरें सुनने में आई थीं। गौरतलब है कि इसके कुछ महीनों बाद अब यह रिपोर्ट सामने आई। शीतल पेयों के 12 प्रमुख ब्राण्डों में लिण्डेन, डीडीटी, मेलाथियान और क्लोरपाइरिफॉस नामक चार घातक रसायनों के अवशेष काफी मात्रा में मौजूद है, ऐसा सीएसई की निर्देशिका सुनीता नारायणन ने पत्रकार सम्मेलन में बताया। ज्यादा दिनों तक इनका सेवन करने से कैन्सर, स्नायु सम्बन्धी बीमारियां, प्रजनन व्यवस्था की क्षति, रोग-प्रतिरोधी क्षमता में गिरावट आदि बीमारियों का शिकार हो सकते हैं। सीएसई द्वारा घोषित ब्राण्डों में पेप्सी, कोकाकोला के साथ-साथ लिम्का, सेवेनप, थम्सप, मिरण्डा, फेंटा, माउन्टेन ड्यू आदि पेय शामिल हैं। ये सारे ब्राण्ड पेप्सीको और कोका कोला के ही हैं जो कि प्रमुख अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियां हैं। सीएसई ने कहा कि इन ब्राण्डों में ये जहरीले पदार्थ यूरोपियन यूनियन द्वारा निर्धारित मानकों से कई गुना – अधिकतम 70 गुना तक – ज्यादा मौजूद हैं। लेकिन अमेरिका और यूरोप में बेचे जाने वाली इन्हीं ब्राण्डों की बोतलों की जांच करने पर उसमें कोई भी हानिकारक पदार्थ का अवशेष नहीं पाया गया, ऐसा सीएसई ने बताया। इससे देशवासियों का खून खौल गया क्योंकि उन्हें साफ मालूम हो गया कि किस तरह अब तक ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियां उन्हें जहर पिलाती रहीं। देश के कोने-कोने में जनता ने विरोध प्रदर्शन शुरू कर दिए। कई जन संगठनों ने इस मुद्दे को उठाकर पेप्सी और कोक के पुतले जलाने, उनकी बिक्री पर प्रतिबन्ध लगाने की मांग करने आदि कार्यक्रम चलाए। जनता के तेवर को देखते हुए शासक वर्गों की कुछ पार्टियों ने भी इस समस्या पर जनता का नेतृत्व किया।

सीएसई की रिपोर्ट के मुताबिक, यूरोपियन आर्थिक आयोग द्वारा निर्धारित प्रमाणों से कितने गुना ज्यादा जहरीले पदार्थ किस पेय में मौजूद हैं ?

मिरिन्डा लेमन	- 70 गुना
कोकाकोला	- 45 गुना
फेन्टा	- 43 गुना
मिरिन्डा ऑरेन्ज	-39 गुना
पेप्सी	- 37 गुना
सेवेनप	- 33 गुना
लिम्का	- 30 गुना
ब्लू पेप्सी	- 29 गुना
मौन्टेन ब्ल्यू	- 28 गुना
थम्सप	- 22 गुना
डाइट पेप्सी	- 14 गुना
स्ट्राइट	- 11 गुना

देश भर में जनता में बढ़ रहे विरोध के आगे सरकार तुरन्त प्रतिक्रिया करने पर मजबूर हो गई। संसद के परिसर में इन पेयों की बिक्री पर फौरन प्रतिबन्ध लगाया गया। लुटेरे शासकों ने सिर्फ संसद में इनकी बिक्री पर पाबंदी लगाकर खुद को तो खतरे से बचा लिया, पर देशावसियों की सेहत की रत्ती भर भी परवाह नहीं की। क्योंकि भारत के शासकों में यह हिम्मत ही नहीं है कि इन पेयों की बिक्री पर देश भर में प्रतिबन्ध लगाकर वे साम्राज्यवादियों को, खासकर अमेरिका को नाराज कर दें। सरकार ने यह आश्वासन दिया कि इस मामले को वह गंभीरता से ले रही है और इस पर व्यापक जांच की जाएगी। लेकिन 21 अगस्त को उसका दलाल चरित्र तब और नंगा हो गया जब केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री सुष्मा स्वराज ने संसद में यह बयान दिया कि दो अलग-अलग प्रयोगशालाओं में किए गए परीक्षणों में यह पता चला कि इन 12 ब्राण्डों में से सिर्फ 9 ब्राण्डों में यूरोपीयन यूनियन से निर्धारित मानकों से अधिक कीटनाशियों के अवशेष मौजूद हैं और सभी 12 ब्राण्डों में भारत के मानकों से कम ही पाए गए। इस तरह की रिपोर्ट से उन लोगों को कोई आश्चर्य नहीं होगा जो सरकार के वर्गीय चरित्र को जानते हैं। सच तो यह है कि सरकार ने तथ्यों को उलट देने और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हितों की हिफाजत करने के लिए ही ये परीक्षण करवाए थे।

जब विपक्षी पार्टियों ने इस पूरे मामले की व्यापक जांच की मांग की तो सरकार ने 22 अगस्त को एक संयुक्त संसदीय समिति का गठन किया। इस 15 सदस्यीय समिति का अध्यक्ष है राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी नेता शरद पवार। बताया गया है कि यह समिति सीईसी की रिपोर्ट का 'स्वतंत्र विश्लेषण' करके सचाई का पता लगाएगी और संसद के आगामी सत्र तक अपनी रिपोर्ट पेश करेगी। इसका मतलब जब तक इस समिति की रिपोर्ट पेश नहीं होगी, तब तक लोगों को इन जहरीले पेयों को पीते ही रहना होगा। फौरन इन पेयों की बिक्री पर प्रतिबन्ध न लगाकर सरकार जिस प्रकार लापरवाही बरत रही है, उसे देखकर कोई भी समझ सकता है कि सरकार को जनता की सेहद के मुकाबले बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के फायदों की चिन्ता ही ज्यादा है। जबकि खुद भारत सरकार की मानक ब्यूरो ने ही सीएसई की रिपोर्ट का अनुमोदन किया, तो इर रिपोर्ट के आधार पर फौरन कार्रवाई करने की बजाए 'स्वतंत्र विश्लेषण' के बहाने टालमटोल करना किस बात का संकेत है? जनता के गुस्से को ठण्डा करने और कुछ वक्त निकाल लेने की मंशा के सिवाए और कोई वजह नजर नहीं आती – सरकार द्वारा इस कमेटी के गठन किए जाने की। कई राज्य सरकारों ने भी इसी ढंग से प्रतिक्रिया व्यक्त की। अगर देश की जनता जाग कर आन्दोलन को तेज नहीं करती तो सचाई को ठीक उसी प्रकार दफनाया जाएगा जिस प्रकार मिनरल वाटर के संदर्भ

में हुआ था।

दरअसल, देश भर में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा जारी अनगिनत अत्याचारों और धांधलियों में कोक और पेप्सी कम्पनियों का जहरीले पेयों को बेचना नगण्य है। करोड़ों लोगों की जिन्दगी के साथ खिलवाड़ करने के जुर्म में इन कम्पनियों के उच्च अधिकारियों को कड़ी से कड़ी सजा देनी चाहिए। सिर्फ अधिकारियों को ही नहीं, सत्ता के आसनों पर बैठे हुए उनके सहयोगियों को भी। उपनिवेशी मानसिकता से ग्रस्त इन साम्राज्यवादी माफियाओं की नजर में भारत के लोग मक्खियों या मच्छरों के बराबर हैं। यही वजह है कि वे अत्यधिक मुनाफों की लालच में पानी को शुद्ध बनाने के खर्च से बच रहे हैं। लेकिन अपने देशों में तो वे उन्नत मानकों का पालन कर रहे हैं। इसीलिए, कोई आश्चर्य नहीं कि अमेरिका के मुकाबले यहां बिक्री करने से इन कम्पनियों को 10 गुना तक अधिक मुनाफे मिल रहे हैं।

इस घटनाचक्र के बाद इन दोनों विदेशी कम्पनियों ने जिस घमण्ड का नंगा प्रदर्शन किया उसे कतई माफ नहीं किया जा सकता। इन्होंने देशवासियों से माफी मांगकर सुरक्षा के प्रमाणों पर ज्यादा खर्च करने का वचन देने की बजाए धमकियां देना और रिश्वत की पेशकश करना शुरू किया। पहले तो इन कम्पनियों ने दावा किया कि सीएसई को यह परीक्षण करने की क्षमता ही नहीं है और कि खुद उनकी साम्राज्यवादी प्रयोगशालाएं (इनमें से एक डच की है) ही यह क्षमता रखती हैं। इन बहुराष्ट्रीय डकैतों को इस सचाई से कोई सरोकार ही नहीं है कि भारत के मानक ब्यूरो (बीआइएस) ने घोषणा की कि सीएसई के परीक्षण के तरीके सही थे। सीएसई द्वारा उजागर किए गए तथ्यों से यह अपराधी कम्पनियां इतनी आतंकित हो उठी थीं कि उन्होंने उच्च न्यायालय में एक याचिका भी दायर की ताकि सीएसई की रिपोर्ट को प्रकाशित होने से रोका जा सके। यदि वे समझती हैं कि वे जो कुछ कह रही हैं सही है तो पूरी रिपोर्ट के प्रकाशन से इतना डर क्यों? यहां तक कि कोक और पेप्सी के मालिकों ने अमेरिकी दूतावास से सलाह-मशविरा करके अमेरिका की ओर से राजनीतिक दबाव लाने की कोशिश भी की। तुरन्त ही दूतावास ने यह चेतावनी भी जारी की कि विदेशी कम्पनियों को "समान रूप से होड़ कर सकने की परिस्थिति (level playing-field)" जरूर मुहैया करवाई जाए।

इन विदेशी कम्पनियों को कठपुतली भारत सरकार ने हर प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध करवाते हुए इतनी छूट दे रखी है कि उन्हें किसी भी प्रकार के स्वास्थ्य प्रमाण का पालन करने की अनिवार्यता नहीं होगी और करोड़ों रुपए की रियायतें भी प्रदान

एक अनुमान के मुताबिक 10 रुपए प्रति बोतल की दर से बेचे जाने वाले शीतल पेय को बनाने में 40 पैसे से ज्यादा खर्च नहीं होता। उसमें जो पेय होता है वह कुछ चम्मच चीनी के बराबर है। कोक में एक अन्य पदार्थ फॉस्फारिक आम्ल भी रहता है। इसका अधिक सेवन करने से दांत खराब हो जाते हैं। यह हड्डियों से कैल्शियम को भी खत्म कर देता है। 1906 तक कोक ने औपचारिक रूप से यह बात स्वीकार की कि उसके फॉर्मुला में एक नशीला पदार्थ - कोकाइन शामिल है। इन शीतल पेयों में कोई पौष्टिक तत्व तो नहीं होते हैं, बल्कि ज्यादा घातक रसायनों के अवशेष होते हैं। हमारे देश में इन पेयों की बिक्री करीब 6,000 करोड़ तक होती है। साम्राज्यवाद द्वारा फैलाई जा रही उपभोक्तावादी संस्कृति के परिणामस्वरूप भी इनका सेवन बहुत ज्यादा बढ़ गया है।

कीं। इसके बावजूद भी ये लोग इससे बढ़कर और किस "समान रूप से होड़ कर सकने की परिस्थिति" की मांग कर रहे हैं? कोक और पेप्सी देश को बराबर लूट रही हैं। जनता को जहरीले रसायनों का घोल बराबर पिला रही हैं। नौकरशाह और राजनेता की जेबें रिश्वत और दलाली से लगातार भर रही हैं। यहां तक कि खुद को सबसे बड़ा वामपंथी बताने वाली माकपा के महासचिव हरिकिशन सिंह सूर्जित ने भी खुलेआम ही कहा कि वह देश में इन शीतल पेय कम्पनियों की गतिविधियों का विरोधी नहीं है। माकपा के संसदीय दल के नेता सोमनाथ चटर्जी ने अपने ही दल के सांसदों की इसलिए खिंचाई की कि उन्होंने "एक संस्था द्वारा उजागर किए गए संदिग्ध तथ्यों" के आधार पर "गैर-जिम्मेदाराना मांगें" उठाईं।

खास तौर पर कोक कम्पनी जिस प्रकार जन विरोधी गतिविधियों और गुण्डागर्दी को अंजाम दे रही है, उसे देखकर दंग रह जाएंगे। यह कम्पनी न सिर्फ लोगों को जहरीले रसायनों का घोल पिला रही है, बल्कि ऐसे कई उदाहरण हैं कि इसके कारनामों से दुनिया भर में कई क्षेत्रों के लोगों के अस्तित्व पर ही सवालिया निशान लग गया। कुछेक लाटिन अमेरिकी देशों की सरकारों की गिराने, उसके हितों को क्षति पहुंचाने वाले देशाध्यक्षों की हत्या करवाने और ट्रेड यूनियनों के नेताओं की हत्या करवाने के लिए भी एक कम्पनी बदनाम है। हमारे देश में इन दोनों कंपनियों ने अपने पेयों को तैयार करने वाले केन्द्रों के लिए सैकड़ों एकड़ जमीन खरीद ली है। महाराष्ट्र में और कई अन्य इलाकों में इन कम्पनियों की गतिविधियों की वजह से स्थानीय जनता को पानी की किल्लत हो रही है। जनता इस सरकारी कदम का कड़ा विरोध कर रही है कि पानी पर उसके अधिकार को इन कम्पनियों को बेच दिया गया है।

बीबीसी ने जो कहानी प्रसारित किया वह तो और भी भयावह है। केरल में कोक कम्पनी अपने कारखाने से निकलने वाले बेकार पदार्थों को स्थानीय किसानों को उर्वरक बताकर बेच रही है। लेकिन केरल के प्रदूषण परीक्षण केन्द्र ने निर्धारित किया कि इसमें कैडमियम जैसे घातक जहरीले पदार्थ मौजूद है। 2001 में आन्ध्रप्रदेश के गुन्टूर जिले में कोकाकोला कम्पनी में तैयार होने वाले थम्सप ब्राण्ड की बिक्री पर प्रतिबन्ध लगाया गया था क्योंकि उसकी बोतलों में ऐसे पदार्थ पाए गए जिनसे

हमारे देश में बेची जाने वाली हर 100 बोतलों में 90 कोक और पेप्सी की ही हैं। इन दोनों कम्पनियों ने हमारे देश की कई छोटी-मोटी बॉटिलिंग कम्पनियों को निगल लिया। इसके अलावा इन दोनों के बीच भी गलाकाट प्रतिस्पर्धा होती रहती है जिसे मीडिया अक्सर "कोला वार" के रूप में चित्रित करती है। लेकिन आश्चर्य की बात है, ज्यों ही सीएसई की रिपोर्ट उजागर हुई इन दोनों कम्पनियों के मुखियाओं ने एक ही मंच पर आकर जवाबी हमला छेड़ दिया।

डयोरिया हो सकती है। यह बात कोकाकोला के गले नहीं उतरी। धमकियों पर उतर आई और उच्च न्यायलय का दरवाजा खटखटाकर प्रतिबन्ध को हटवाने में कामयाब हो गई।

कोक कम्पनी ने देश की कई बॉटिलिंग कम्पनियों को या तो औने-पौने भाव में खरीद लिया या फिर बन्द करवा दिया। कोकाकोला के प्रवेश के बाद कई भारतीय बॉटिलरों की कम्पनियां बन्द पड़ गईं और उनका दिवालिया निकल गया। इसके अलावा हमारी दलाल सरकारों ने इन दोनों विदेशी कम्पनियों को करोड़ों रुपए की रियायतें देकर देशीय औद्योगिक क्षेत्र को जबर्दस्त नुकसान पहुंचाया। इन कम्पनियों को दलाल सरकारों द्वारा उपलब्ध हो रही सुविधाओं और रियायतों के सम्बन्ध में जो तथ्य सामने आ रहे हैं वे देश की सम्प्रभुता को ही कलंकित कर देने वाले हैं। एक अनुमान के मुताबिक पिछले आठ सालों से कर्नाटक सरकार ने इन दोनों कंपनियों को करीब 170 करोड़ रुपए की कर रियायत दी। इस राज्य में शीतल पेयों पर 18 फीसदी बिक्री कर लगता है। लेकिन कम्पनी को दी गई रियायत के कारण राज्य की कुल 70 छोटी और मध्यम शीतल पेय कम्पनियों में से अधिकतर बन्द हो गईं। इस तरह ये कम्पनियां स्वदेशी शीतल पेय कम्पनियों को बाजार से निकाल बाहर करने में कामयाब हो गईं।

ऐसी अर्थव्यवस्था का निर्माण करो जो अपने पैरों पर खड़ी रहे !

दरअसल ऐसे पेयों की तैयारी के लिए हमें विदेशी कम्पनियों से पाठ सीखने की कोई जरूरत नहीं है जिनमें मीठे और रंगीन पानी के अलावा कुछ भी नहीं रहता। तो क्यों कर सरकार शीतल पेय जैसी मामूली चीजों को भी साम्राज्यवादियों को ही सौंप रही है? क्योंकि देश के शासक वर्ग और उनकी सरकारें इस प्रक्रिया में पुरी तरह से जुटी हुई हैं कि एक के बाद एक सभी मोर्चों को साम्राज्यवादी ताकतों को बेच दिया जाए। यह काम पूरा भूमण्डलीकरण के नाम से तथा 'आर्थिक सुधारों' के नाम से हो रहा है। लेकिन शासक वर्गों ने इस बार लोगों को बड़े पैमाने पर सड़कों पर उतर आते हुए, पेप्सी और कोक की बोतलों को तोड़ते हुए, स्कूलों और अन्य संस्थाओं में इन पेयों की बिक्री पर प्रतिबन्ध लगाते हुए तथा इन दोनों कम्पनियों के खिलाफ व्यापक विरोध की लहरों को उभरते हुए देखा। दरअसल कोक और पेप्सी के ये किस्से देश में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा जारी काले कारनामों के उदाहरण मात्र हैं। इनके जघन्य अपराधों और अनैतिक गतिविधियों पर राजनीतिक सांठगांठ एक परदे का काम कर रही है।

ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियां भारत को मनमाने ढंग से लूट रही हैं – देश का नाश कर रही हैं। सभी बुर्जुवाई राजनीतिक पार्टियां "आर्थिक सुधारों" के प्रति सहमति प्रकट करते हुए इनके दलालों के तौर पर काम कर रही हैं। अब इन पार्टियों की यही कोशिश है कि इन कम्पनियों का किस तरह बचाव किया जाए और जनता के गुस्से को किस तरह ठण्डा किया जाए। इन कोशिशों के एवज में इन्हें विदेशी माफिया से बड़े पैमाने पर रिश्वत जरूर मिलेगी।

इसलिए, इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के खिलाफ वास्तविक संघर्ष करना है तो समूची जनता को उठ खड़ी होकर इनके सारे उत्पादों का बहिष्कार करना चाहिए। यहां साम्राज्यवादियों और उनके दलालों की गतिविधियों के खिलाफ एक विशाल जनांदोलन खड़ा कर देना चाहिए। पहले प्रयास के तौर पर कोक और पेप्सी के खिलाफ फिलहाल जो आन्दोलन खड़ा हुआ उसे देश के कोने-कोने तक फैलाकर इनके पेयों का बहिष्कार करने की दिशा में ले जाना चाहिए। इसके पहले कुछ मुस्लिम संगठनों ने भी इस प्रकार के बहिष्कार का आह्वान किया था। अफगानिस्तान पर अमेरिकी हमले के मौके पर हमारी पार्टी के नेतृत्व में आन्ध्रप्रदेश में जनता और जन गुरिल्ला फौज के छापामारों ने कोकाकोला कम्पनी को उड़ाकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के खिलाफ जुझारू संघर्ष की जरूरत पर जोर दिया। इराक पर अमेरिकी हमले के मौके पर हमारी पार्टी ने अमेरिकी और ब्रितानी वस्तुओं के बहिष्कार का आह्वान किया। ***हमारे दण्डकारण्य गुरिल्ला जोन इलाके में जनता को गोलबन्द करके कोक और पेप्सी के शीतल पेयों की बिक्री पर प्रतिबन्ध लागू करने की कोशिश करनी चाहिए। साथ ही, जनता में साम्राज्यवाद विरोधी चेतना को जगाना चाहिए।*** फिलहाल देश में कई तबकों के लोगों में साम्राज्यवाद विरोधी भावनाएं तीखी हो रही हैं। आशा करेंगे कि यह माहौल एक महान आन्दोलन की आधारशिला साबित हो जो सारी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को देश से निकाल बाहर कर दे। ✸

भैरमगढ़ इलाके में 28 जुलाई शहीद-सप्ताह कार्यक्रम सम्पन्न

ज्यों ही 28 जुलाई नजदीक आया, पश्चिम बस्तर डिवीजन के भैरमगढ़ इलाके के तमाम जन संगठनों ने शहीद सप्ताह का प्रचार शुरू किया। डीएकेएमएस और केएएमएस के कुल 20 जत्थों ने 97 गांवों में प्रचार अभियान चलाया। छात्रों ने अपने स्कूलों की दीवारों पर शहीदों को लाल सलाम पेश करते हुए नारे लिखे। एक तरफ सीआरपी बलों के दमनचक्र को झेलते हुए भी इलाके के समूचे लोगों ने शहीदों को श्रद्धांजलि देने का कार्यक्रम क्रान्तिकारी परम्पराओं के साथ पूरा किया। 28 जुलाई के दिन इलाके में मौजूद सारे कस्बों में पोस्टर लगा दिए गए। भैरमगढ़, माटवाडा और बीजापुर कस्बों में बने-बनाए स्मारक लगा दिए गए। लेकिन पुलिस बलों ने उन्हें निकालकर अपनी कायरता का प्रदर्शन किया। जहां-जहां 'जनता ना सरकार '(जनता की राजसत्ता) बन गई है, वहां-वहां उसके दायरे में आने वाले सभी गांवों के लोग इकट्ठे होकर शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित की। उसके बाद इलाके में कुल 10 बड़ी सभाएं हुईं। 31 जुलाई को एक जगह आयोजित एक विशाल सभा में 8,275 लोगों ने भाग लिया। इसमें महिलाओं की संख्या करीब 3,500 तक थी। ये लोग कुल 11 गांवों से आए हुए थे। इस सभा को सम्बोधित करने वाले वक्ताओं ने दुश्मन द्वारा जारी दमनचक्र को हराकर शहीदों के मकसद को पूरा करने की जरूरत पर जोर दिया। उन्होंने उपस्थित लोगों का आह्वान किया कि बस्तर से सीआरपी को भगा दिया जाए। सभा में शहीदों की याद में कई गीत पेश किए गए। सभा के बाद शहीदों के अधूरे सपनों को पूरा करने के नारे लगाते हुए क्रान्तिकारी उत्साह के साथ लोग अपने-अपने गांव चले गए। ✪

पुलिस के पुरस्कारों को एकजुटता के साथ ठुकरा दो !

'गांव बन्दी' – पुलिसिया दमन के स्वरूपों में से एक

जनता के दुश्मनों का पर्दाफाश करो – उन्हें सजा दो !

सरकार और पुलिस शुरू से ही कोशिश करती आ रही हैं और कई साजिशें रचती आ रही हैं ताकि क्रान्तिकारी आन्दोलन का विस्तार न हो सके और वह मजबूत न हो सके। इसमें जनता को गिरफ्तार करना, यातनाएं देना, जेलों में कैद करना, काले कानूनों का प्रयोग, अदालतों का चक्कर लगवाना, जनता की सम्पत्तियों (मकान, खेत अन्य घरेलू सामान) को नष्ट करना, गांवों को खाली करवाना, जनता पर कई प्रकार की पाबंदियां लगाना, काउन्सिलिंग करवाना और झूठी मुठभेड़ों में मार देना आदि तरीके तो पुलिस के लिए आम हो ही चुके हैं। जनता में कार्यरत क्रान्तिकारियों का सफाया करने के लिए और उन्हें जनता से अलग करने के लिए भी पुलिस व सरकार लगातार कोशिश कर रही हैं। जंगलों में खोजबीन करना, गश्त लगाना, मुखबिरों की मदद से क्रान्तिकारियों के मुकामों पर हमला करना, गोलीबारी करना, गिरफ्तार करके मार डालना, आत्मसमर्पण के लिए दबाव डालना, आत्मसमर्पण करने वालों को विशेष सहायता, सिर पर इनाम घोषित करना, महत्वपूर्ण इलाकों में घात लगाकर हमले करना, काले गिरोहों का गठन करना, क्रान्तिकारी आन्दोलन के खिलाफ जहर उगलते हुए दुष्प्रचार अभियान चलाना आदि रूपों में पुलिसिया दमन जारी है। दूसरी ओर सुधार कार्यक्रम भी जोरों पर चल रहे हैं। सरकारी सुधारों के अलावा पुलिसिया सुधार भी जारी हैं। आन्दोलन के इलाकों में जैसे 'सुधारों का राज' चल रहा है। इसमें जनता को कर्ज देने से लेकर लोगों से संगठन बनाना तक शामिल हैं। हाल ही में 'गांव बंदी' के नाम से पुलिस ने एक और दमनकारी तरीके को ईजाद किया है। यहां यह बताना मुनासिब होगा कि ये सब पिछले कुछ सालों से जारी चौतरफा हमले का हिस्सा ही हैं। यानी सरकार द्वारा अपनाई गई कम तीव्रता वाले संघर्ष की रणनीति के तहत ही यह हमला जारी है। आइए, इसकी यहां विस्तृत चर्चा करें।

आज-कल टीवी और पत्र-पत्रिकाओं में यह खबर अक्सर देखने और पढ़ने को मिल रही हैं कि 'फलां गांव के लोगों ने नक्सलवादियों को भगा दिया है।' इसी को मराठी में 'गांव बंदी' का नाम दिया गया है। गांव बंदी का मतलब नक्सलवादियों को गांव में आने से रोक देना। क्रान्तिकारियों को जनता से अलग करके उन्हें कमजोर करने की सारी कोशिश विफल हो जाने के बाद पुलिस ने इस साल के फरवरी से गांव बंदी का सिलसिला शुरू किया। इसको लेकर काफी दुष्प्रचार किया जा रहा है।

महाराष्ट्र पुलिस ने इस साल जनवरी से अप्रैल तक 'जन जागरण अभियान' चलाया है। बाद में इसे जुलाई तक बढ़ा दिया। यह अभियान नक्सल प्रभावित कहलाने वाले पांच जिलों – गड़चिरोली, चन्द्रपुर, यवतमाल, भण्डारा और गोंदिया – में चलाया गया था। इस अभियान के दौरान इन जिलों के पुलिस अधिकारियों ने कई सभाओं और सम्मेलनों का आयोजन किया। हर पुलिस थाना मुख्यालय और हर बड़े गांव में सभाएं हुईं। सभी सरकारी विभागों के अधिकारियों को इन सभाओं में बुलाया गया। इस इलाके की छोटी-बड़ी सभी राजनीतिक पार्टियों के नेताओं, कबीलाई मुखियाओं और सरपंच, सभापति, जिला परिषद सदस्य जैसे तथाकथित जन-प्रतिनिधियों को भी इन सभाओं के मंच पर बुलाया गया। इसके अलावा उस क्षेत्र के भूतपूर्व नक्सलवादियों और संगठन नेताओं को भी सभाओं में लाया गया। इन्हीं लोगों को मुख्य वक्ता बनाया गया। सभाओं का धूम-धाम से आयोजन किया गया। आसपास के गांवों के लोगों को डरा-धमकाकर या बहला-फुसलाकर इकट्ठा किया गया। इन सभाओं में बोलने वाले हर वक्ता को यही बताना पड़ता है कि नक्सलवादियों की वजह से ही जनता को कई समस्याएं पेश आ रही हैं। जनता को अपनी समस्याओं के समाधान के लिए सरकार के पास जाना है, नक्सलवादियों के पास नहीं – यह भी बोलना पड़ता है। दरअसल ऐसे ही लोगों को बोलने के लिए आमंत्रित किया गया जो इस प्रकार बात कर सकें। गांवों में अपना प्रभुत्व गंवा चुके जन विरोधियों और पुलिसिया दमन से डरकर आत्मसमर्पण कर चुके लोगों को ही वहां बुलाया गया, यह स्थानीय जनता अच्छी तरह जानती है। ये लोग अपने-अपने गांवों में क्रान्तिकारी गतिविधियों में किसी न किसी रूप में रोड़े अटकाने वाले ही हैं। शोषित जनता को संगठित होने से रोकने की हर संभव कोशिश करते हैं। महाराष्ट्र में सम्पन्न दर्जनों सभाओं का रस्मी आयोजन इसी प्रकार हुआ। इन सभाओं के समापन में एक और किस्सा भी जोड़ा जाता था।

सभा के समापन से पहले जिला एसपी लोगों को सम्बोधित करता है। वह अपने भाषण में नक्सलवादियों को गांवों में आने देने से पेश आ रही समस्याएं गिनाता है। पुलिस को नक्सलवादियों के खिलाफ और जनता के पक्ष में काम करने वाले बताता है। लोगों को वह चेतावनी देता है कि नक्सलवादियों को गांवों में आने मत दें ताकि लोगों और पुलिस को किसी समस्या का सामना न हो सके। लोगों को वह हाथ उठाकर अनुमोदन जताने को कहता है। भारी संख्या में पुलिस की उपस्थिति के बीच भोलेभाले आदिवासियों के सामने हाथ उठाने के अलावा कोई चारा ही नहीं रह जाता। इन दृश्यों को मीडिया वाले कैमरे में भर लेते हैं जो पुलिस के साथ ही आते हैं। अखबार वाले लिख लेते हैं। अगले दिन इसे अखबारों में छापा जाता है। तरह-तरह की कहानियां लिखी जाती हैं कि कितने गांवों के कितने सौ लोगों ने अपने-अपने गांवों में नक्सलवादियों को नहीं आने देने की बात की। इसी को 'गांव बन्दी' के नाम से प्रचारित किया जा रहा है। जनता के साथ अपने रिश्तों को सुधारने और जनता का विश्वास जीतने की मंशा से पुलिस ने जन जागरण अभियान के तहत दो दिवसीय 'जन जागरण मेलाओं' का भी आयोजन किया। इन दो दिनों में कबड्डी और वॉलीबाल खेल प्रतियोगिता, रेला नृत्य प्रतियोगिता, स्वास्थ्य शिविर, सरकारी अधिकारियों के साथ समस्याओं का समाधान-शिविर आदि कार्यक्रम चलाए गए। मेला के अन्त में रैली निकालकर लोगों द्वारा क्रान्ति के खिलाफ और सरकार के पक्ष में नारे लगाए गए। यह सारा आयोजन

सरकारी अधिकारी सुनियोजित ढंग से काम का सुचारू रूप से बंटवारा करके करते हैं। यहीं तक गांव बंदी की रस्म पूरी नहीं होती।

गड़चिरोली जिले के कुरखेड़ा तहसील में सबसे पहले 'गांव बन्दी' की सभाएं हुईं जिसकी खबरें अखबारों में तस्वीरों के साथ छापी गईं। अखबारों ने लिखा है कि 30 गांवों के लोगों ने नक्सलवादियों की 'गांव बन्दी' कर दी। तुरन्त ही एसपी राजवर्धन ने इस खबर की फोटोकॉपी करवाकर जिले भर में सैकड़ों गांवों में पुलिस वालों के जरिए बंटवाया। उसके बाद आयोजित सभी सभाओं में यह एक मुख्य खबर बन गई। दूसरी तरफ महाराष्ट्र में निर्माणाधीन ग्राम सुरक्षा समितियों को लेकर अखबारों में पुलिस उलटी-सीधी बातें लिखवा रही है। इसमें नागपुर एसपी उपाध्याय आगे है। उसने घोषणा की कि वहां के ग्रामीण इलाके में 3,000 युवक इसमें शामिल हो गए। उसका कहना है कि असामाजिक तत्वों, चोरों और डकैतों को पकड़ने में इनका निर्माण काफी उपयोगी होगा। ये लोग रात के 12 बजे से सुबह के 6 बजे तक गांव में गश्त लगाएंगे। इनके साथ पुलिस वाले भी होंगे। दरअसल यह नौजवानों को गुमराह करके उन्हें अपना भागीदार बनाने की प्रक्रिया ही है। इन्हें डंडा, विजिल, टार्च लाइट आदि दिए जाते हैं। नागपुर एसपी ने इसके नतीजों को लेकर काफी ढिंढ़ोरा पीटा। उसका कहना है कि समाज का विश्वास खो चुकी पुलिस के साथ नौजवानों के रहने से रिश्ते सुधर रहे हैं। बकौल उसके जनता यह महसूस करने लगी है कि उसकी सुरक्षा का जिम्मा खुद उसी पर है। उसका कहना है कि इस प्रक्रिया से बेरोजगार युवक काफी खुश हैं। उसने कर्मचारियों से भी अपील की कि वे भी इनसे मिलकर रातों में गश्त लगाएं। इसका मतलब ग्रामीण इलाकों में सुरक्षा मुहैया करवाने में विफल हुई पुलिस अब न सिर्फ अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो रही है, बल्कि जनता के खिलाफ अपने सहयोगियों को तैयार कर रही है। यह प्रक्रिया नागपुर के अलावा हर उस इलाके में लागू होगी जहां ग्राम सुरक्षा समितियों का गठन हो रहा है। जनता को हम सावधान कर रहे हैं कि इनके गठन से होने वाले नतीजे खतरनाक होंगे। पुलिस का एक मात्र मकसद यही है कि मुख्य रूप से क्रान्तिकारी आन्दोलन के इलाकों में नौजवानों में क्रान्तिकारी जन संगठनों, पीजीए और क्रान्तिकारी पार्टी के बारे में जहरीला प्रचार किया जाए। 1980-82 में सिरोंचा-अहेरी इलाके में कई गांवों में पुलिस ने यही तरीका अपनाया था जिनके बारे में वहां के गांवों में बुजुर्ग लोग अभी भी पूछने पर बताते हैं। लेकिन उस समय नौजवानों ने जल्द ही पुलिस के साथ गांवों में गश्त लगाना बन्द कर दिया था। पुलिस के दुष्प्रचार को समझकर उन्होंने खुद को जन संगठनों में गोलबन्द करना शुरू किया। अब पुराने इतिहास को फिर एक बार दोहराने की कोशिश ही चल रही है।

इस मौके पर कांग्रेस पार्टी इन कार्यवाहियों को न्यायोचित ठहराने की पूरी कोशिश कर रही है। कांग्रेस पार्टी के सामाजिक न्याय विभाग का अध्यक्ष विवेक पंडित ने कहा कि उसने गड़चिरोली के हालात के बारे में सोनिया गांधी को अवगत करावाया है। इस शख्स का कहना है कि एक तरफ पुलिस और दूसरी तरफ नक्सलवादी, दोनों के बीच जनता पिसती जा रही है। उसने आंकड़ों का हवाला देते हुए बताया कि दो साल पहले नक्सलवादियों के नियंत्रण के लिए सरकार ने स्पेशल एक्शन प्लान कमेटी का गठन करके 5 करोड़ रुपए स्वीकृत किया तो उसमें से 95 लाख से ज्यादा खर्च नहीं किया गया। उसने यह जिक्र करते हुए कि 30 गांवों में लोगों ने संगठित होकर हिम्मत के साथ नक्सलवादियों का बहिष्कार किया है, ऐसे लोगों को प्रोत्साहित करने की बात की। इसका सीधा मतलब यह है कि लोगों को पैसा देकर उन्हें खरीद लिया जाए। इस तरह की बातें उन उदारतावादी जनवादियों को काफी प्रिय लगती हैं, जो विकास के बारे में बहुत कुछ बोलते तो हैं पर जनता के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। ऐसे लोगों को बेवकूफ बनाने के लिए ही विवेक पंडित जैसे लोग रिपोर्टें बनाकर अखबारों को जारी कर देते हैं।

सरकार ने तुरन्त मोर्चा सम्भाल लिया। मुख्यमंत्री शिंदे ने ऐसे गांवों को एक-एक लाख रुपए का इनाम घोषित किया। उसने लोगों से कहा कि इन पैसों को गांव की सांझी जरूरतों के लिए खर्च करें और नक्सलवादियों के भय से मुक्त होकर ग्राम विकास का काम खुद ही करें। गौरतलब है कि जनता में आतंक मचाने वाले सी-60 क्राक कमाण्डो बल (महाराष्ट्र सरकार ने 1992 में नक्सल-विरोधी विशेष बलों का गठन इसी नाम से किया) के पांच जवानों का सफाया और दो को घायल करने की घटना के दो दिन बाद महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री शिंदे ने गड़चिरोली का दौरा करके इन इनामों की घोषण की।

पुलिस वाले गांव बंदी के बारे में बढ़ा-चढ़ाकर प्रचार करते हुए इसे खूब हवा दे रहे हैं। तथ्यों को तोड़-मरोड़कर अनाप-शनाप बक रहे हैं। पुलिस इस कथन में ज्यादा यकीन करती है कि एक झूठ को बार-बार दोहराने पर वह सच बन जाएगा और जनता उस पर विश्वास करने लगेगी। पुलिस अपने ढंग से ये आंकड़े बता रही है कि पिछले अक्टूबर में 30 गांवों से शुरू हुई यह 'गांव बन्दी' अब 150 गांवों में फैल गई। मुख्यमंत्री इससे खुश होकर उन गांवों के लिए दो करोड़ 25 लाख रुपए की इनाम राशि घोषित की। गौरतलब है कि ज्यों ही गांवों की संख्या बढ़ गई, मुख्यमंत्री ने इनाम की राशि भी एक लाख से डेढ़ लाख तक बढ़ाई।

इनाम की राशि जा कहां रही है?

सबसे पहले यह बात याद रखनी होगी कि जो लोग पुलिस के साथ सुर मिलाकर नक्सलवादियों को मार भगाने की पुकार कर रहे हैं वह आमतौर पर जन-विरोधी तत्व ही हैं – यानी बुरे शरीफज़ादे, आवारागर्द और वो लोग जिन्हें जनता और जन छापामारों के हाथों सजा मिल चुकी हो। सरकार से प्राप्त होने वाले हर प्रकार के सुधारों से फायदा भी अमूमन इन्हीं लोगों को मिल रहा है। ये लोग अपनी साख का इस्तेमाल करते हुए अपने पीछे एक गिरोह बनाने के फिराक से हमेशा कुछ न कुछ साजिश रचते ही रहते हैं। जहां क्रान्तिकारी जन संगठन और मिलिशिया चौकन्ना रहते हैं वहां पर इनके सारे काले कारनामों का समय पर पर्दाफाश किया जा रहा है और इन पर अंकुश लगाया जा रहा है। लेकिन जहां संगठन कमजोर हैं वहां पर फिलहाल इन्हीं तत्वों का बोलबाला है। ये लोग गांवों में खुलकर क्रान्तिकारी गतिविधियों को रोकने की हिम्मत नहीं कर पाते। लेकिन सरकारी दफ्तरों में और पुलिस थानों में 'गांव बन्दी' के पैसे लेने को काफी उतावले रहते हैं। पुलिस जो पैसा दे रही है वह इन्हीं जन-विरोधी तत्वों की जेबों में जा रहा है। कहीं से भी इन पैसों को गांव की सामूहिक जरूरतों में खर्च किए जाने की खबर नहीं है। यही लोग इन पैसों का खर्च करके अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। इन 150 गांवों में से किसी भी गांव में जाकर देखें तो पाएंगे कि सरकारी इनाम के पैसों से गांव की शोषित जनता का कोई ताल्लुक नहीं है।

पुलिस को यह 'गांव बन्दी' किसने सिखा दी?

क्रान्तिकारी आन्दोलन को कुचलने में आन्ध्रप्रदेश पुलिस सभी राज्यों की पुलिस का गुरू बन गई है। यहां की पुलिस इज्राएल, स्काटलैण्ड यॉर्ड और अमेरिकी बलों से प्रशिक्षण ले रही है। आन्ध्रप्रदेश के ग्रे-हाउण्ड्स बल सभी राज्यों के विशेष पुलिस बलों को प्रशिक्षण दे रहे हैं ताकि उसी तरह के बलों का गठन हर जगह किया जा सके। छत्तीसगढ़ में हाक फोर्स (जो अब भंग कर दिया गया), महाराष्ट्र में क्राक कमाण्डो बलों और अन्य नक्सल प्रभावित राज्यों के अलग-अलग पुलिस बलों को इस तरह का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। क्रान्तिकारी आन्दोलन पर जारी चौतरफा हमले का एक हिस्सा ही है यह 'गांवों से नक्सलवादियों का बहिष्कार' और यह भी दमन का एक स्वरूप ही है। यह सब साम्राज्यवादियों के आदेशों के तहत जारी 'कम तीव्रता वाले संघर्ष की रणनीति' (एलआईसी) का हिस्सा भी है। दरअसल 'अन्नाओं (भाइयों) को गांवों से बहिष्कार' करने का यह तरीका छह साल पहले आन्ध्रप्रदेश के पूर्वी गोदावरी जिले के गांव पेद्दामल्लापुरम और निजामाबाद जिले के मैलारम में शुरू हुआ था जो अब व्यापक रूप ले लिया है। उपरोक्त गांवों में पुलिस की मदद प्राप्त कुछ आवारागर्दों ने छापामारों पर हमला किया था। खासतौर पर पेद्दामल्लापुरम में इस घटना के पीछे एक गैर-सरकारी संगठन का हाथ था। उक्त घटनाओं में छापामारों के सामने प्रतिरोध के अलावा कोई रास्ता ही नहीं बचा था। इसी को लेकर पुलिस वालों ने क्रान्तिकारियों के खिलाफ व्यापक दुष्प्रचार अभियान चलाया था।

खुद मुख्यमंत्री ने उन गांवों का दौरा करके उन लोगों की तारीफ करके उन्हें नगद इनाम घोषित कर उन्हें उकसा दिया था। कुछ तथाकथित प्रगतिशील संगठनों और मानवाधिकार संगठनों ने इस घटना को सच मान लिया तो कुछ अन्य जन संगठनों ने गांवों का दौरा करके अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। तब से लेकर गांव बहिष्कार की खबरें साल-दर-साल अखबारों में ज्यादा से ज्यादा दिखाई देने लगीं। पुलिस ने बताया कि इस साल जुलाई माह तक सिर्फ अनन्तपुर जिले में ही ऐसी 17 घटनाएं हुईं। इस प्रकार शुरू हुआ यह 'गांव बहिष्कार' आज सभी राज्यों में फैल चुका है।

नौ राज्यों में फैला हुआ 'गांव बहिष्कार'

क्रान्तिकारियों को गांवों से कथित रूप से बहिष्कार करने की प्रक्रिया धीरे-धीरे सभी राज्यों में फैल गई। जेओसी आन्ध्रप्रदेश के सारे अनुभव स्वीकार रही है जो आज क्रान्तिकारी आन्दोलन को कुचलने में साम्राज्यवादियों के लिए एक प्रयोगशाला बन चुका है। नक्सल प्रभावित नौ राज्यों (आन्ध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, बिहार, झारखण्ड, उत्तरप्रदेश और पश्चिम बंगाल) के वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों की बैठक हर तीन माह में एक बार हो रही है। इनका जेओसी मार्गदर्शन कर रही है ताकि आन्ध्रप्रदेश और अन्य राज्यों के अनुभवों को एक-दूसरे से ले सकें। इसी के मार्गदर्शन में सभी राज्यों में इसे लागू करने के लिए प्रेरित किया जा रहा है। गांवों में रहने वाले कुछ जन-विरोधी व असामाजिक तत्वों द्वारा कोई वारदात किया जाता है तो उसे पुलिस अपना रंग देकर खूब प्रचारित कर रही है। हाल में घटित कुछ वारदात इस प्रकार रहे –

झारखण्ड के पूर्वी सिंहभूम जिले के लांगो गांव में पुलिस ने 'नागरिक सुरक्षा समिति' का गठन किया था। इनमें जिन लोगों को शामिल किया गया वो सब जन विरोधी अथवा आवारागर्द ही थे। सितम्बर 2003 में इस गांव में जब एक छापामार दस्ता गया था, तब इन्होंने दस्ते को धोखा देकर एक बहुत बड़ी साजिश के तहत पूरे 9 लोगों की हत्या की। उसके बाद चार अन्य कॉमरेडों की भी इसी प्रकार हत्या कर दी गई। बाद में पुलिस ने इन्हें नगद इनाम और सुरक्षा का बन्दोबस्त घोषित किया।

उड़ीसा के रायगडा जिले के गुणपुर, चन्द्रपुर, गुडारी और बिस्यंकटक इलाकों में क्रान्तिकारी आन्दोलन जारी है। यहां हजारों किसानों ने संगठित होकर गांवों में सामंती प्रभुत्व को तोड़ दिया और तोड़ रहे हैं। इससे उड़ीसा पुलिस ने आन्ध्र पुलिस के नक्शेकदम पर चलते हुए जन-विरोधियों को एकजुट किया। 'शांति सेना' नाम से एक संगठन का निर्माण करके दाकुवा मांझी को उसका नेता बनाया। इसने गांवों में आदिवासियों को डरा-धमकाकर अगस्त-अक्टूबर 2003 के बीच, यानी तीन महीनों में 40 सभाओं का आयोजन किया। इसने गांवों में जन संगठनों के नेतृत्व पर हमले करवाकर 30 लोगों को आत्मसमर्पण करवाया। क्रान्तिकारी आन्दोलन से बाहर जा चुके अन्य 10 छापामारों को भी इसने पुलिस के हातों पकड़वाया। इस घटनाक्रम को स्थानीय और देशीय प्रसार माध्यमों में दाकुवा के नेतृत्व में हजारों आदिवासियों द्वारा नक्सलवादियों को गांवों से बहिष्कार के रूप में चित्रित किया गया।

छत्तीसगढ़ राज्य 'जन जागरण अभियान' के लिए जाना जाता है। दरअसल जनता इसे 'जन दमन अभियान' कहती है। इसका मुखिया महेन्द्र कर्मा है जो पहले राज्य का उद्योगमंत्री भी हुआ करता था। इसने पिछले एक दशक के दौरान अनेक बार इस तरह के अभियान चलाए जिसमें उसने अपनी गुण्डावाहिनी को लगाया था। यहां के अखबारों ने इसकी ज्यादतियों का समर्थन करते हुए और उस की तारीफ करते हुए बड़ी-बड़ी सुर्खियां लगाकर खबरें छापी थीं। इसे नक्सलवादियों का मुकाबला करने वाला बहादुर नेता कहा गया। लेकिन जनता ने जल्द ही सचाई को समझकर उन लोगों को सबक सिखा दिया जो इस दमनकारी अभियान की अगुवाई की थी। फिर भी कुछेक जगहों पर स्थानीय जन-विरोधी तत्व वन संरक्षण समिति, ग्राम सुरक्षा समिति आदि का गठन करते हुए किसी न किसी रूप में जन जागरण अभियान चलाने की कोशिश कर रहे हैं। इस वर्ष (2003) के अप्रैल और मई महीनों में कोइलीबेड़ा इलाके में इस प्रकार की कुछ घटनाएं घटित हुईं। लेकिन जनता ने चौकन्ना होकर इसका मुकाबला किया तो फिलहाल वह दब गया।

उपरोक्त राज्यों के अलावा अन्य राज्यों में भी इस प्रकार के षड़यंत्र लागू किए जा रहे हैं। आन्ध्र पुलिस तो ऐसी कार्यवाहियों को लागू करने में माहिर बन चुकी है। हाल में आदिलाबाद जिले के कडम्बा गांव में पुलिस ने कुछ लम्पट तत्वों को लामबन्द करके वहां के छापामार दस्ते का सफाया करने की साजिश रची थी। हालांकि कॉमरेड मधुनय्या और उनके दो साथी इन गुण्डों का मुकाबला करते हुए बच निकलने में कामयाब हो गए, पर उन्हें अपनी बन्दूकें गंवानी पड़ीं। छापामारों से छीनी गई बन्दूकों को उन्होंने पुलिस के हवाले कर दिया। इस काले कारनामे को पुलिस ने बढ़-चढ़कर प्रचारित किया। मुख्यमंत्री चन्द्रबाबू नायुडू ने तुरन्त ही उस गांव को 50 लाख रुपए का इनाम घोषित किया। इससे समझा जा सकता है कि सरकार किस प्रकार जनता के धन का दुरुपयोग कर रही है। सब राज्यों की पुलिस के तौर-तरीकों पर नजर डालने पर मालूम पड़ रहा है कि इस तरह की कार्यवाहियों को आने वाले दिनों में और *(शेष पृष्ठ 5 पर ....)*

जंगलों का बचाव - एक विकल्प

दण्डकारण्य के गड़चिरोली डिवीजन में सरकारी वन विभाग वालों ने 2003 के मई-जून महीनों में जंगलों के बचाव के नाम पर जंगल में जगह-जगह खाइयां (गड्ढे) खुदवाईं। उनका मानना है कि जंगल से आदिवासियों द्वारा बड़े पैमाने पर लकड़ी ले जाए जाने से जंगलों का नुकसान हो रहा है। इसीलिए उन्होंने गांव के परिसरों में जंगलों में खाइयां खुदवाईं ताकि ग्रामवासियों को जंगल से लकड़ी ले जाने से रोका जा सके। लोगों को मजदूरी पर रखकर खाइयां खुदवाकर उन्हें मजदूरी के तौर पर धान दिया गया। ये सारे काम 'काम के बदले अनाज' के नाम से किए गए। इन्हें सूखे के दिनों में जनता को राहत पहुंचाने वाले 'विकासकारी' काम बताया गया और इसे जंगलों के बचाव का हिस्सा बताया गया। यह भी बताया गया कि इनसे जंगलों और पर्यावरण की हिफाजत की जाएगी। क्या यह सच है? क्या यह सचमुच विकास ही है? या दमन? क्या इतिहास में कभी भी और कहीं भी ऐसा हुआ कि शासक वर्गों ने पर्यावरण का बचाव किया हो? क्या उनके इस दावे में कोई सचाई है कि चूंकि जनता इन कामों का विरोध नहीं कर रही है, इसलिए यह न्यायोचित और लोकतांत्रिक है? हकीकत क्या है?

सरकार ने जंगलों के उन्मूलन को रोकने के लिए जंगलों के हिफाजत की जिम्मेदारी सामुदायिक प्रबन्धन के नाम पर वन संरक्षण समितियों को सौंप दी है। सर्वोच्च अदालत ने भी इसका समर्थन किया। उसने यह भी फैसला सुनाया कि जंगलों में सदियों से खेती-किसानी करते हुए जी रहे आदिवासियों को उनकी जमीनों से बेदखल कर दिया जाए। इससे करीब एक करोड़ से ज्यादा आदिवासी परिवार प्रभावित होने जा रहे हैं। निश्चित समय-सीमा के भीतर उन्हें उजाड़ने को भी सुप्रीम कोर्ट ने कहा। जरूरत पड़ने पर बल का प्रयोग करने के लिए भी अदालत ने मंजूरी दी। क्या वाकई किसानों को उनकी जमीनों से हटाने का काम कभी शान्तिपूर्ण ढंग से हो सकता है? इन जमीनों को अपने कब्जे में लेने के लिए न जाने उन्होंने कितने संघर्ष किए होंगे? आज भी अपनी जमीनों पर काश्त करते रहने के लिए वे कितनी मुश्किलों का सामना कर रहे होंगे? इन सब बातों से सुप्रीम कोर्ट का क्या लेना-देना! इसके तहत आदिवासियों को जबरन हटाने का सिलसिला दण्डकारण्य के सिरोंचा, चामोर्शी, कोइलीबेड़ा और अन्य इलाकों में शुरू हो चुका है। लेकिन जमीन से अपना नाता तोड़ लेने को कौन किसान तैयार होगा? इन इलाकों के किसान अपनी जमीनों को बचाने के लिए आगे आ रहे हैं। क्या किसानों को उनकी काश्त की जमीनों से हटाने से जंगलों का बचाव हो सकेगा? जंगलों के व्यापक विनाश के लिए दरअसल कौन जिम्मेदार हैं? क्या जंगल में चारों तरफ खाइयां खोदने और किसानों को जमीनों से बेदखल करने से जंगलों के बचाव की गारन्टी होगी? इसके लिए मुख्य रूप से कौन जिम्मेदार हैं? इसके पीछे साजिश किनकी है? उनके स्वार्थपूर्ण हित क्या हैं? इन सारी बातों को समझना जरूरी है।

किसान अपनी जरूरतों के लिए जंगल से अपनी मर्जी से लकड़ी लाए, यह परिस्थिति काफी पहले ही खत्म हो चुकी है। 1867 में अंग्रेजों के शासन के दौरान ही पहली बार जंगल के कई कानून बनाए गए। जंगल पर मालिकाना सरकार का हो गया और जंगलों में जीने वाले आदिवासियों और गैर-आदिवासी किसानों को जंगल पर अपने परम्परागत अधिकार से वंचित होना पड़ा। जंगल में जीने वाले लोग जंगल से पराए बनाए गए। कई नए लुटेरे कानूनों के आने से जंगलों के बचाव के नाम से जंगलात अधिकारियों का आना शुरू हो गया। इससे आदिवासियों और अन्य किसानों को जंगलों से आजादी से और मुफ्त में लकड़ी और पान-पत्ते लाने का मौका ही नहीं रह गया। पत्ता तोड़ने या लकड़ी काटने या फिर खेत निकालने से लोग कसूरवार बनाए जाने लगे। उनके मवेशियों को जंगल में चराना भी मना कर दिया गया। कई पाबंदियों और कड़े कानूनों के बीच पिछले 150 सालों से आदिवासी कई समस्याएं झेलते आ रहे हैं। जेल, केस, कोर्ट-कचहरियों का चक्कर, खाकी बलों के अत्याचार, जुल्म, अपमान आदि जनता की जिन्दगी का हिस्सा बन गए। इसे भारत भर में आदिवासियों की बदहाली के रूप में देखा जा सकता है जो अंग्रेजों के शासन काल से शुरू हो गई। दण्डकारण्य भी इसका अपवाद नहीं रहा है।

दण्डकारण्य के आदिवासियों की जिन्दगी में क्रान्तिकारी आन्दोलन ने जबर्दस्त बदलाव लाया। यहां के लोगों ने खुद को आन्दोलन के तहत लामबन्द करके 'यह जंगल हमारा है' कहकर ऐलान किया। जंगल विभाग के लुटेरे कानूनों को चुनौती दी। किसानों पर सरकार द्वारा लगाए जाने वाले झूठे मामलों का विरोध किया। एक समय बीट गार्ड के हाथ में एक हथौड़े को देखकर भयभीत होने वाले आदिवासियों ने उन्हें सबक सिखा दिया। जंगलों को आरक्षित जंगल और सुरक्षित जंगल में बांट कर उनमें आदिवासियों के प्रवेश पर पाबंन्दी लगाते हुए बनाए गए कानूनों को निकम्मा बनाया गया। जंगलों में लोगों और बैल-गाड़ियों के प्रवेश को रोकने की मंशा से जगह-जगह पर खोदी गई खाइयां फिर से भर दी गईं। जंगलों में लोगों को घूमने न देने की साजिश के तहत सरकार द्वारा जारी कांटेदार बबूल के पेड़ों का रोपण काम पूरी तरह ठप्प हो गया।

आन्दोलन के इतिहास में जनता ने संगठित होकर सबसे पहले जंगल विभाग को ही टक्कर दी। उस विभाग के कर्मचारियों का मुकाबला किया। उन्हें शैतान बताते हुए देखते ही डरने वाले आदिवासियों ने कई जगहों पर उनके जुल्मों और अत्याचारों का हिम्मत के साथ मुकाबला किया। परिणामस्वरूप जंगल विभाग वालों ने जंगल छोड़कर अपना मुकाम रेंज मुख्यालयों में बदल दिया। इससे जनता को फिर से आजादी के साथ, बेरोकटोक, अनुमति-पत्रों के बिना ही जंगल का उपयोग करने का मौका मिल गया। अपने मवेशियों को लोगों ने दोबारा स्वेच्छा के साथ चराना शुरू किया। जितनी जमीन चाहिए उतने जंगल को काटकर काश्त के काबिल जमीन निकाल ली। उनकी जो पुरानी जमीनें थीं उन पर दोबारा कब्जा कर लिया गया। सरकारी पट्टा कागजों की परवाह किए बिना ही खेती करना शुरू किया। आत्मसम्मान के साथ जीने लग गए। गौरतलब है कि 1980 में जंगल केन्द्र सरकार के नियंत्रण में चले गए जिससे राज्य सरकारों का पट्टा देने का अधिकार समाप्त हो गया। तब से लोगों को पट्टे नहीं दिए जा रहे हैं।

ये बदलाव शासक वर्गों को रास नहीं आए। वे यह महसूस करने लगे कि जंगल पर उनका अधिकार व मालिकाना खत्म होते जा रहे हैं। इसे किसी भी तरह दोबारा कायम करने के इरादे से कई साजिशें रचने लग गए। उनकी कोशिश यही रही कि जनता के इस विद्रोह को समाप्त करके शोषण का सिलसिला जारी रखा जाए। सरकार ने

चिल्लाना शुरू किया कि जंगलों के विनाश से आमदनी घटती जा रही है। उनकी चिन्ता का कारण यह भी है कि जंगल के व्यापार पर करोड़ों रुपए कमाने वालों की आमदनी खत्म होती जा रही है। सरकार ने जंगलों में बड़े पैमाने पर पुलिस बलों को उतारा। जंगल पूरा खाकीमय बना दिया। शासक एक तरफ तीव्र दमनकारी कार्यवाहियां अपनाकर युद्ध जैसा माहौल बनाते हुए ही दूसरी तरफ उसे 'न्यायोचित' ठहराने के लिए विकास के नाम पर कई सुधारों का ढोंग कर रहे हैं। इसका हिस्सा ही है वन संरक्षण समितियों का निर्माण, गड्ढों की खुदाई, तालाब आदि बनाना, लोगों को घर बनाकर देना, अस्थाई पट्टे देना इत्यादि। ये सारे काम पिछले कुछ सालों से सरकार द्वारा चलाई जा रही एलआईसी (कम तीव्रता वाला संघर्ष) की रणनीति का हिस्सा ही हैं। एक तरफ वन विभाग वाले जानवरों के संरक्षण के बहाने गांवों को जबरन उजाड़कर वन्य प्राणी संरक्षण केन्द्र, राष्ट्रीय उद्यान आदि भी खोल रहे हैं। इन्हें दिखाकर पर्यटन क्षेत्र को प्रोत्साहन दे रहे हैं। विदेशी पर्यटकों से डॉलरों की आमदनी की आस लगाए बैठे हैं। जंगलों की व्यापक तबाही करते हुए भारी परियोजनाओं का निर्माण किया जा रहा है। इसके परिणामस्वरूप देश के लाखों आदिवासी बेघर हो गए हैं। यह सब विकास के ही नाम से जारी है। लेकिन यह विकास किन वर्गों का काम आ रहा है? यही एक अहम सवाल है। देश की आबादी में सिर्फ मुट्ठी भर लुटेरे शासक वर्गों को ही इस विकास से फायदा हो रहा है। इस विकास के बदले करोड़ों लोगों का विनाश किया जा रहा है। इसे रोककर ही असली विकास के दरवाजे खोले जा सकते हैं। यह सिलसिला पिछले दो दशकों से दण्डकारण्य में जारी है। जनवाद का मुखौटा पहनी हुई सरकार द्वारा जारी फासीवादी हिंसाचार से टक्कर लेनी पड़ रही है। इस संघर्ष के दमन के लिए सरकारें अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा संस्थाओं से बड़े पैमाने पर कर्ज ले रही हैं। उनकी सारी शर्तों को स्वीकार रही हैं। कामकाज के दौरान जो भ्रष्टाचार-घोटाले होंगे सो अलग। वर्तमान का एक और पहलू यही है। यही इतिहास है जो यहां निर्मित हो रहा है। आइए, अब इसका जायजा लें।

दण्डकारण्य में एक तरफ महाराष्ट्र और दूसरी तरफ छत्तीसगढ़ राज्य के वन विभाग वालों ने कई गांवों में वन संरक्षण समितियों (वीएसएस) का निर्माण किया। इनमें वो लोग भर्ती हो रहे हैं जिनका दबदबा गांवों में समाप्त कर दिया गया हो या जो लम्पट और पुलिस के पिट्ठू हों। जंगल में जनता की भागीदारी का नारा जो सरकार दे रही है, उसके तहत ये तत्व वीएसएस में भर्ती होकर गांव पर अपना दबदबा फिर से जमाने की कोशिश कर रहे हैं। जंगल विभाग वालों से मिलकर ये लोग गांव में सारे सरकारी काम खुद ही चलाते हैं। उनके भ्रष्टाचार-घोटालों में ये लोग भी शामिल होंगे, इसमें कोई सन्देह ही नहीं। गड़चिरोली डिवीजन में पिछले मई-जून महीनों में जंगल विभाग वालों द्वारा करवाए गए सारे काम प्रायः ऐसे ही हुए।

पिछले साल देश के कई राज्यों के साथ महाराष्ट्र ने भी सूखे की मार झेली। राज्य के 300 से ज्यादा तहसीलों में रहने वाले लाखों लोग सूखे के दिनों में छटपटाते रहे। खासतौर पर आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े हुए आदिवासियों पर सूखे का असर और ही खतरनाक रहा। सरकारी गोदामों में सड़ रहे अनाजों में से एक हिस्सा केन्द्र सरकार ने राज्य सरकारों को बांट दिया। इसमें सभी ने अपने-अपने ओहदे के मुताबिक खा लिया तो जो बाकी बचा उसी को 'काम के बदले अनाज' के नाम से लोगों में बांटा गया। इस योजना के तहत करवाए गए कामों में जंगल में खाइयों की खोदाई भी है। गड़चिरोली की जनता ने गड्ढों की खुदाई के कामों का बहुत पहले ही विरोध किया था। फिर भी वन विभाग वालों ने पुलिसिया दमन का सहारा लेकर फिलहाल इन्हीं कामों को अपनाया। लगभग एक मीटर गहरी और आधा मीटर चौड़ी लम्बी-लम्बी खाइयों को जंगल में जगह-जगह पर खुदवाया गया। अधिकारियों का कहना है कि इन्हें खोदने से जंगल में बैल-गाड़ियों को कोई नहीं ले जा सकता। बारिश में इन खाइयों में पानी भर गया। इनसे चरवाह बच्चों और बछड़ों के डूब मरने का खतरा बन गया। लेकिन यह तो साफ हो गया कि जो लोग बैल-गाड़ियों में लकड़ी भरकर ले जाया करते हैं उन्हें इन खाइयों से कोई फर्क नहीं पड़ता। फिर सरकार ने जनता की जरूरतों के लिए छोड़े गए इन जंगलों (निस्तार कूपों) में इस प्रकार खाइयां क्यों खुदवाईं? इसे समझने के लिए हमें केइन्स महाशय को याद करना होगा।

ब्रिटेन का केइन्स 18वीं सदी के एक जाना-माना बुर्जुवाई अर्थशास्त्री था। उसने बेरोजगारी की समस्या, जो कि पूंजीवादी दुष्परिणामों से एक है, से निपटने के लिए जनता को रोजगार मुहैया करवाने की बात कही। उसने बताया कि सरकार की यह जिम्मेदारी है कि वह या तो कर्ज लाकर या फिर ज्यादा नोट छपवाकर लोगों को काम दे। उसमें खाइयां खुदवाने का काम भी बताया गया। केइन्स का मानना यह रहा कि इस प्रकार काम देने से जनता को राहत मिल जाएगी और शासक वर्ग उसका शोषण को बेरोकटोक जारी रख सकेंगे। आज प्रधानमंत्री रोजगार योजना, रोजगार गारन्टी योजना, काम के बदले अनाज, बेरोजगार भत्ता जैसे नाम चाहे जो भी हो, ग्रामीण इलाकों में जारी इस प्रकार की योजनाएं केइन्स के सिद्धान्त पर ही आधारित हैं। इस प्रकार के फालतू कामों में किस गांव के कितने लोगों को लगाया गया, इसके आंकड़े तैयार करके सरकारी अधिकारी बड़े गर्व के साथ पत्र-पत्रिकाओं में छपवाते हैं, जो आज-कल एक आम बात सी बन गई है।

लोगों ने इन खाइयों का यह कहकर विरोध किया कि इनसे कोई उपयोग नहीं है। फिर भी जंगल विभाग वालों ने इसे जारी रखकर अपनी मूर्खता का प्रदर्शन किया। इन खाइयों के निर्माण से जंगलों का कितना बचाव होगा, इसे तो इस तथ्य से समझा जा सकता है कि हर दिन जंगल घटते ही जा रहे हैं। सूखे से पीड़ित लोगों को रोजगार मुहैया कराने के बहाने इस प्रकार सरकार द्वारा जारी निरर्थक और जन विरोधी कामों का जनता विरोध कर रही है। देशों और इलाकों के बीच में कांटेदार तारों, खाइयों, सड़कों आदि के निर्माण से उनके बीच सम्बन्ध को नहीं तोड़ा जा सकता, यह बात इतिहास में बार-बार साबित हो चुकी है। (याद रहें कि चीन में आधार इलाकों के फैलाव को रोकने के लिए चाङ काई-शेक ने दीवारें बनाईं थीं, साम्यवाद के फैलाव को रोकने के लिए साम्राज्यवादियों ने पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी के बीच दीवार बनवाई थी, और अब फिलिस्तीनियों के हमलों को रोकने के लिए इज्राएल अब दीवार बनवा रहा है) खाइयों के निर्माण से भी जंगलों का विनाश नहीं रुक सकता। कांटेदार बबूल बोने से जंगलों में लोगों का घूमना बन्द नहीं हो सकता। ये सारे कदम न सिर्फ अलोकतांत्रिक हैं, बल्कि जनता के दमन के लिए ही उठाए जा रहे हैं। इससे जनता के विकास का दूर-दूर तक कोई नाता नहीं है। इस पृष्ठभूमि में, अब दण्डकारण्य के कुछ इलाकों में जनता द्वारा जंगलों के सही बचाव के लिए उठाए गए वैकल्पिक कदमों पर नजर डाली जाए। इसके पहले यह समझा जाए कि बूर्जुवाओं के 'विकास' के दावों में कितनी सचाई है।

जंगलों की हिफाजत के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा संस्थाओं में इतना उतावलापन क्यों?

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा संस्थाएं बार-बार यह चेतावनी दे रही हैं कि हमारे देश के जंगल साल-दर-साल घटते जा रहे हैं। उदारपंथी पर्यावरणविदों को प्रोत्साहित कर रही हैं। ये कई गैर-सरकारी संगठनों को भी खड़ा कर रही हैं जिनका मकसद सिर्फ जंगलों की हिफाजत ही है। नए विचारों के बहाने आकर्षक शब्दों की आड़ में यहां की सरकारों द्वारा कई प्रकार की संस्थाओं का गठन करवा रही हैं। वन संरक्षण समिति, सामुदायिक प्रबन्धन, जनता की भागीदारी आदि शब्दों से जनता को ये संस्थाएं क्यों गुमराह कर रही हैं, इस पर नजर डालना जरूरी है। यह भी समझना जरूरी है कि हमारे देश के जंगलों को बचाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा संगठन क्यों हजारों करोड़ों का धन कर्ज में देकर यहां की सरकारों के साथ समझौते कर रहे हैं।

देश के 10 करोड़ से ज्यादा आदिवासियों की जन्मस्थली कहलाने वाले जंगलों और पहाड़ों का चाहे कितना भी विनाश हो चुका हो, पर अभी भी मौजूद हैं। बड़े-बड़े बांधों और परियोजनाओं से व्यापक जंगलों के डूब जाने के बावजूद भी अभी भी काफी जंगल मौजूद हैं। इनका दोहन करने के लिए साम्राज्यवादी आए दिन साजिशें रच रहे हैं। पिछड़े देशों को लूटकर अपनी झोली भरने वाले साम्राज्यवादियों की नजरें हमारे देश के जंगलों पर टिकी हुई हैं। चूंकि जनता में चेतना बढ़ रही है, इसलिए वे सचाई पर परदा डालने के इरादे से नए-नए शब्द गढ़ रहे हैं। जंगलों का दोहन के साथ-साथ यहां पर मौजूद अपार खनिज भण्डारों को लूटने के लिए भूमण्डलीकरण के तहत लगातार साजिशें कर रहे हैं। सचाई यही है जिसे साम्राज्यवादी विकास की संज्ञा दे रहे हैं। दुनिया को यह दिखलाने की कोशिश भी साम्राज्यवादी कर रहे हैं कि यह सब जनता के अनुमोदन से और उनकी भागीदारी के साथ लोकतांत्रिक ढंग से चल रहा है। इस प्रकार अपनी लूट-खसोट की नीतियों को जायज ठहराने की कोशिश कर रहे हैं। सुप्रीम कोर्ट का फैसला भी इसी प्रक्रिया का हिस्सा है। यहां की जनता को बेदखल किए बिना और खेत-जमीनों को तबाह किए बिना साम्राज्यवादी खदान नहीं खोल सकेंगे। इन्हें समझे बिना जनता को जागरूक नहीं बना सकते। जनता को निष्क्रिय और स्तब्ध बनाकर उनमें प्रतिक्रियावादी विचार रोपने की जो कोशिशें साम्राज्यवादी कर रहे हैं, उन्हें विफल बनाने के लिए तथ्यों को जनता के सामने पेश करना जरूरी है। यह जिम्मेदारी हमारे देश के सच्चे लोकतंत्र के प्रेमियों और जनता के हित चाहने वाले पर्यावरणविदों पर है।

दण्डकारण्य के अन्तर्गत जहां गड़चिरोली जिले में जंगल विभाग वाले खाइयों का निर्माण कर रहे हैं, वहीं बस्तर इलाके में जनता ने जंगलों की हिफाजत की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेकर जो कदम उठाए वो बिलकुल भिन्न हैं। सरकारी जंगल विभाग वाले जंगल को अपने अनुकूल कूपों में बांटकर योजनाबद्ध ढंग से लूट रहे हैं। कूपों को विभाजित करने वाली सरहदी लाइनें भी बनाई गईं। लेकिन जनता के लिए ये बेमानी हैं। इसमें जनता की मंजूरी नहीं है। जंगल के गांवों की जनता में शुरू से अपनी तरह की हदबन्दियां हैं। इस जंगल पर निर्भर करते हुए वे अपनी घरेलू और खेती-किसानी की जरूरतें पूरी कर लेते हैं। सरकारी कानूनों की जकड़ में आने के बावजूद यहां के बाशिंदों में परम्परागत हदबन्दियों की प्रथा खत्म नहीं हुई। पिछले दो दशकों से जारी क्रान्तिकारी आन्दोलन के फलस्वरूप यह प्रथा फिर से मजबूत हो गई। जंगलों को बचाने के लिए जनता खुद ही आगे आ रही है। सबसे पहले लोगों ने सरकारी जंगल विभाग के जंगल काटने के काम पर प्रतिबन्ध लगाया। जंगल विभाग वालों को जंगल में घूमने से भी जनता ने मना कर दिया, जिससे आज-कल जंगलों में वे आते ही नहीं। सरकार को जनता ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि हवा से गिरे हुए पेड़ों को भी ले जाने की कोई जरूरत नहीं है। इससे सरकार द्वारा किए जाने वाले जंगलों की मनमानी कटाई पर रोक लगाई गई। जंगलों के विनाश में ज्यादा हिस्सा सरकारी कटाई का ही रहा करता था। यहां की क्रान्तिकारी जन कमेटियां (यह नाम जनता की राजसत्ता के अंगों का है) जनता से अपील कर रही हैं कि वे अपनी खेत-जमीनों के लिए नए सिरे से जंगलों को मत काटें। क्रान्तिकारी भूमि-सुधारों की प्रक्रिया के तहत गांवों में गरीब किसानों और खेतिहर मजदूरों को अतिरिक्त जमीनें बांटी जा रही हैं। इस प्रकार जहां-जहां क्रान्तिकारी जन कमेटियां कार्यरत हैं वहां उनकी जरूरतें पूरी कर दी जाने से उन्होंने जंगलों को काटना धीरे-धीरे बन्द हो गया। जनता अपने द्वारा चुनी गई 'जंगल बचाव कमेटी' से सलाह-मशविरा करके ही घरेलू व खेती की जरूरतों के लिए – जलाऊ लकड़ी, बांस-बल्लियां वगैरह ला रही है। जंगल विभाग वालों की नजरों से बचते हुए चोरी-चुपे से लकड़ी लाने की स्थिति से वे अब बाहर हो गए। अब चोरी की लकड़ी का शब्द ही नहीं सुनाई देता। खाकी कपड़े पहनकर आतंक मचाने वाले जंगल विभाग वालों के अत्याचार, चोरी के मामले, पीओआर की धमकियां आदि समाप्त हो गए। क्रान्तिकारी आन्दोलन के शुरू होने के बाद पैदा हुई नई पीढ़ी को तो इस अतीत के बारे में मालूम ही नहीं है। स्वाभिमान के साथ पल-बढ़ रही इस नई पीढ़ी को देखकर पुरानी पीढ़ी के लोग खुश हैं।

जंगल विभाग वालों के अत्याचारों और जुल्मों का अन्त होने से लोग गर्व महसूस कर रहे हैं। यह सही विकल्प है। यही सही विकास है जिसका जुड़ाव जनता की जिन्दगी के साथ, जनता की चेतना के साथ, जनता के प्रयासों के साथ है। यह लोकतांत्रिक और न्यायोचित है। देश में यह एक नए नमूने के तौर पर उभर रहा है। एक नई प्रक्रिया पनप रही है।

इस नमूने को मिटाने की मंशा से शासक वर्ग जी-तोड़ कोशिश कर रहे हैं। बर्बर हिंसा मचा रहे हैं। जंगलों में बड़े पैमाने पर खाकी बलों को उतार कर आदिवासियों के खिलाफ उन्हें उकसा रहे हैं। यह सब 'लोकतंत्र' की आड़ में ही किया जा रहा है। इसे जायज ठहराने के लिए घिनौने ढंग से दुष्प्रचार अभियान चलाया जा रहा है। राज्य और केन्द्र सरकारें साझे तौर पर रणनीतिक योजनाएं रचते हुए संविधान, कानून, अदालत, इंसाफ, चुनाव, मुख्य धारा आदि शब्दों के मायाजाल फैलाते हुए चौतरफा हमला चला रही हैं। दूसरे शब्दों में यह सीधा-सीधा जनता के खिलाफ युद्ध ही है। उनकी कोशिश यही है कि किसी भी कीमत पर जनता द्वारा निर्मित इस नए और प्रगतिशील नमूने और नए विकल्प का गला घोंट दिया जाए। इसलिए इसका बचाव करने और दो दशकों के क्रान्तिकारी आन्दोलन के फलस्वरूप हासिल की गई उपलब्धियों को टिकाए रखने के लिए जनता को व्यापक स्तर पर आगे आने की जरूरत है। जनता के इन संघर्षों का समर्थन करते हुए जनता का साथ देने की अहम जिम्मेदारी देश के तमाम जनवाद पसन्द लोगों पर है। हम एकजुटता के साथ यह साबित करके दिखाएंगे कि जनता में फूट डालकर और जनता की जिन्दगी के साथ खिलवाड़ करके इतिहास के रथ को पीछे धकेलने की शासक वर्गों की सारी कोशिशें जरूर नाकाम होंगी। ✸

अमेरिकी 'रोड मैप' – यहूदीवादियों के दमनचक्र का जिम्मा 'फिलिस्तीनी राज्य' के हाथों में सौम्पने की एक और साजिश

दशकों से पश्चिम एशिया का मसला सुलगता ही रहा है। साम्राज्यवाद ने अपने स्वार्थपूर्ण हितों की खातिर पश्चिम एशिया में जो चिनगारी लगाई वह आज आग बनकर फिलिस्तीनी राष्ट्र को और उसकी जमीन को जला रही है। और आज अमेरिकी महाशक्ति उस आग में घी डालकर पश्चिम एशिया पर अपनी पकड़ मजबूत करने की कोशिश कर रही है। एक राष्ट्रीयता की जमीन को कब्जाना, वहां दूसरी राष्ट्रीयता के लोगों को बसाना, एक नए देश का गठन और उसे पाल-पोसकर पश्चिम एशिया की महाशक्ति के रूप में उभारना साम्राज्यवादियों की कुटिल नीति का ही हिस्सा है। इसका नतीजा ही इज्राएल का सृजन है। महाशक्तियों के समर्थन से इज्राएल द्वारा जारी दुराक्रमणकारी युद्धों के चलते पश्चिम एशिया की जमीन लगातार लहूलुहान है। इज्राएल के दुराक्रमणकारी युद्ध के चलते फिलिस्तीनी लोगों को अपनी जमीन और अपनी मातृभूमि से वंचित होकर शरणार्थी बनकर पड़ोसी देशों में जाना पड़ा। फिलिस्तीन की पूरी जमीन को नजरबन्दी शिविरों में तब्दील करके इज्राएली यहूदी अंधराष्ट्रवादियों ने जो कत्लेआम का सिलसिला जारी रखा है इसने नात्सियों को भी पीछे छोड़ दिया है।

अपनी ही सरजमीन पर शरणार्थी बनकर जीने को मजबूर फिलिस्तीनियों ने अपनी आजादी के लिए सितम्बर 2000 में एक और *इंतिफदा* का आह्वान दिया। वे अपनी ही जमीन को मैदान-ए-जंग में तब्दील कर और खुद को ही हथियार बनाकर इज्राएल के जुल्म और अत्याचारों का कड़ा मुकाबला कर रहे हैं। पिछले पचास सालों में कई शांति समझौते किए गए हैं। लेकिन उन सबका अन्त यहूदी अंधराष्ट्रवादियों द्वारा मचाए गए व्यापक कत्लेआमों के साथ ही हो गया। पिछले अप्रैल के आखिर में अमेरिका ने रोड मैप के नाम से एक नई 'शांति' योजना सामने लाई। इसका भी वही हश्र हो गया जिस प्रकार इसकी तमाम पूर्ववर्ती योजनाओं का हुआ था। आइए, अब इस पर गौर करें कि दरअसल यह रोड मैप क्या बताता है और क्या उसमें फिलिस्तीनियों को आजादी, जिसकी तमन्ना वे लम्बे अरसे से रखते आ रहे हैं, देने का कोई उद्देश्य है भी या नहीं।

समझौतों की आड़ में जारी धोखाधड़ी का सिलसिला

आंतकी इज्राएली राज्य की देखरेख में 'फिलिस्तीनी राज्य' के गठन की प्रक्रिया इसके पहले कई बार टाल दी गई। 1993 के इज्राएल-फिलिस्तीन समझौते (ओस्लो समझौते) की पृष्ठभूमि में कुछ इज्राएली अधिकारों को फिलिस्तीनी प्राधिकरण (Palestinian Authority) के तहत बदले जाने के प्रस्ताव भी थे। यही फिलिस्तीनी प्राधिकरण आखिरकार 'फिलिस्तीनी राज्य' में तब्दील हो जाएगा। हालांकि इसे स्वतंत्र राज्य कहा जाएगा, लेकिन इसका अस्तित्व पूरा इज्राएली यहूदी अंधराष्ट्रवादियों के रहमोकरम पर निर्भर करेगा। इसके पहले के रोड मैपों ने भी फिलिस्तीन को राज्य का दर्जा देने की ही बात की थी। लेकिन फिलिस्तीनियों के लोकतंत्र के इर्द-गिर्द फैलाए गए ढोंग की परतों के चलते इस रोड पर मुसाफिरों को कई बार औंधे मुंह गिरना पड़ा। इस रास्ते में मुख्य रोड़ा खुद फिलिस्तीनियों का प्रतिरोधी आन्दोलन ही था। उसने इस प्रकार की छलपूर्ण 'शांति' योजनाओं में फंसने से इनकार कर दिया। यासर अराफत जैसे गद्दार बेशर्मी के साथ अमेरिका के आगे घुटने टेककर फिलिस्तीनी लोगों के गुस्से को काबू करने की नाकाम कोशिश कर रहे हैं। फिलिस्तीनियों को खुद अपने ही नेतृत्व के हाथों धोखा खाना पड़ा। वे इज्राएल के उन तमाम फासीवादी तरीकों का कड़ा विरोध कर रहे हैं जो वह उन पर लागू कर रहा है। इन पूरे सालों में फिलिस्तीनी लोग इज्राएली सेना के हमलों का बहादुरी के साथ मुकाबला करते आए हैं। हजारों लोगों ने सर्वोच्च बलिदान दिए। परिणामस्वरूप शांति के रोड मैप कहलाने वाली तमाम योजनाएं टांय-टांय फिस्स हो गईं। हर योजना का समापन इज्राएलियों के और ज्यादा जुल्मों और उसके जवाब में फिलिस्तीनियों के और ज्यादा कड़े प्रतिरोध के साथ ही हो गया। आखिर वर्ष 2000 में एक जबर्दस्त विरोध आन्दोलन और एक शानदार क्रान्तिकारी आन्दोलन शुरू कर दिया गया जिसे '*इन्तिफदा*' कहा जाता है। पिछले तीन सालों से यह जारी है। इस आन्दोलन को कुचलने के लिए इज्राएल द्वारा छेड़े गए कातिलाना हमलों में ढाई हजार से ज्यादा फिलिस्तीनियों ने अपनी जानें गंवाईं, दसियों हजारों लोग या तो घायल हो गए या फिर विकलांग बन गए। हजारों फिलिस्तीनियों के घर तबाह कर दिए गए। लाखों लोग बेघरबार हो गए।

1993 में जिस 'शांति' (जाहिर है यह हत्याओं और तबाही से युक्त थी) दशक को कायम करने की बात साम्राज्यवादी-यहूदीवादी (यहूदीवाद का अर्थ है यहूदी अंधराष्ट्रवाद) गठबन्धन ने की थी उसका मतलब था फिलिस्तीनियों के जरिए फिलिस्तीनियों पर आंतक लागू करवाना। अमेरिका और इज्राएल ने यासर अराफत पर बार-बार यह दबाव डाला कि वह फिलिस्तीनी जनता पर आंतक को लागू करने में उनकी पूरी मदद करे और विद्रोही जनता का दमन करके खुद को उनका नमकहलाल पिट्ठू साबित कर ले। उन्होंने उससे यह वायदा किया कि वह इस काम में कामयाब होने पर ही फिलिस्तीन को राज्य का दर्जा दिया जाएगा। इज्राएली राजकीय आतंक के खिलाफ फिलिस्तीनियों का प्रतिरोधी संघर्ष इतना ताकतवर था कि अराफात अपनी पूरी कोशिशों के बावजूद भी एक काबिल पुलिस के तौर पर अपनी जिम्मेदारी निभाने में नाकाम हो गया। लेकिन जनता में अपनी साख को बनाए रखने के लिए उसने समय-समय पर इज्राएली अत्याचारों के खिलाफ फिलिस्तीनियों का पक्ष लिया। उसने यह कहकर विरोध प्रकट किया कि इज्राएल द्वारा जारी हिंसात्मक कार्यवाहियों के चलते

उसे अपना काम पूरा करना मुश्किल हो रहा है। उसके संगठन अल फतह ने इज्राएली फौजी मशीन द्वारा लगातार जारी हमलों का मुकाबला करने के लिए मजबूर होकर अल अक्सा ब्रिगेड को शुरू किया। इज्राएलियों के जुल्मों ने फिलिस्तीनी जनता को इतना भड़का दिया और इतना सचेत किया कि अराफत इस स्थिति पर नियंत्रण नहीं बना सका। हालांकि अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने फिलिस्तीनी लड़ाकुओं को काबू करने को अराफत से बार-बार कहा, लेकिन वह यह काम नहीं कर सका। उनके आदेशों पर उसने कई मिलिटेन्टों को गिरफ्तार करके इज्राएल को सौम्प दिया। अपने आंतरिक रक्षा मामलों तथा कानून और व्यवस्था को बनाए रखने में सीआईए (अमेरिकी गुप्तचर संगठन) के हस्तक्षेप को उसने स्वीकार भी किया। अमेरिका के आदेशों पर उसने सुधारों को लागू किया। राज्य यंत्र को दोबारा व्यवस्थीकृत किया। और आखिर में महमूद अब्बास को प्रधानमंत्री के तौर पर नियुक्त करने की मांग भी मान ली जो अमेरिका का दुमछल्ला था। इस आखिरी मांग को मानकर अराफत ने अपनी अंत्येष्टि की खुद ही तैयारी कर ली। यह बात अटपटी लगती है कि जिस शख्स ने अमेरिकी साम्राज्यवादियों के आदेशों का पालन करने में जी-जान लगा दी, वही आदमी अब उनकी नजरों में उतना वफादार पिट्ठू नहीं रहा जितना कि वे उम्मीद करते थे। वह दोबारा विश्वास हासिल नहीं कर पाया। और गिने-चुने प्रधानमंत्री के तौर पर जिम्मेदारी लेने वाले अब्बास ने उसे ताक पर रखना शुरू किया।

नाकेबन्दी में अराफात

अराफात की हालत अब बेहद खस्ता और हास्यास्पद बन गया है। एक ओर वह फिलिस्तीनी आन्दोलन के साथ गद्दारी करके अमेरिका के तमाम आदेशों का पालन करते हुए ही दूसरी ओर फिलिस्तीनी जनता को अपने पक्ष में रखने की हताशापूर्ण प्रयास कर रहा है। वह दो परस्पर विरोधी शिविरों के बीच, यानी शोषकों और शोषितों के बीच रजामंदी बनाने की विफल और पागलपन भरी कोशिश कर रहा है।

इन्तिफदा ने आत्मघाती बम हमलों को काफी प्रेरणा दी। फिलिस्तीनियों के आत्मघाती हमलों से यहूदीवादियों की रीढ़ की हड्डी में कंपकंपी पैदा हो गई। फिलिस्तीनियों की जानों की रत्ती भर भी परवाह न करते हुए आए दिन उन्हें मार गिराने वाले इज्राएली हंतक बलों को ये बम हमले एक अनिवार्य जवाब थे। फिलिस्तीनी लोगों के दुश्मनों, जिनमें कई अरब सरकारें भी शामिल हैं, ने अराफत से मांग की कि बम हमलों और अन्य तमाम किस्म के प्रतिरोध को समाप्त किया जाए। अराफत ने यह तर्क दिया कि जब तक इज्राएल 1967 के बाद की जमीनों पर अपना कब्जा जारी रखेगा, जब तक फिलिस्तीनी जमीन पर से अपनी बस्तियों को खाली नहीं करेगा और जब तक विस्थापित हुए 45 लाख फिलिस्तीनी शरणार्थियों को दोबारा अपने गांवों में बसने की इजाजत नहीं देगा तब तक वह इस आन्दोलन को नहीं रोक सकेगा। इसका अर्थ है "फिलिस्तीनी जमीनों" पर इज्राएली अपना हस्तक्षेप को त्याग कर "फिलिस्तीनी राज्य" के गठन के रास्ता साफ करें। उसका तर्क है कि यह भले ही सीमित क्यों न हो, लेकिन पहले इसकी स्थापना करने से दो राज्यों का सह-अस्तित्व सम्भव हो सकेगा।

लेकिन शेरोन और उसके पूर्ववर्ती इस पर अड़िग थे कि फिलिस्तीनी प्राधिकरण सबसे पहले अपनी पुलिसिया जिम्मेदारी सक्षम रूप से निभाए और उसके बाद ही अधिकारों के बारे में बात करे। इज्राएल संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी प्रस्तावों का उल्लंघन करता आ रहा है। इन जमीनों को खाली करवाने को वह कभी तैयार नहीं था। क्योंकि वह इराक जैसा कोई गरीब व कमजोर देश तो नहीं है जो संयुक्त राष्ट्र संघ की बात मान ले। जब वह पश्चिम एशिया में प्रतिक्रियावाद का मजबूत गढ़ हो तो अमेरिका उस पर दबाव क्यों डालेगा कि वह अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की बात और अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय की बात मान ले? जब खुद मालिक एक बहुत बड़ा डकैत हो तो उसके पालतू कुत्ते के नखरों को समझा जा सकता है न! इसीलिए अराफत के नेतृत्व वाले फिलिस्तीनी प्राधिकरण साम्राज्यवादियों और यहूदीवादियों की सारी मांगें पूरी नहीं कर सका। अमेरिका और इज्राएल के हितों और मंसूबों के मुताबिक काम करने में फिलिस्तीनी प्राधिकरण नाकाम हो गया। वे नालायक पुलिस साबित हो गए। दूसरी ओर अमेरिका तो इज्राएल द्वारा अमल तमाम उत्पीड़क व आंतकपूर्ण हमलों का समर्थन करते हुए उसे अरबों डॉलरों की सहायता कर रहा है ताकि वह और भी खतरनाक उन्मादी बन सके।

पिछले तीन सालों में इज्राएलियों ने गाजापट्टी और पश्चिमी तट के उन तमाम कस्बों और शहरों की नाकेबन्दी की जो फिलिस्तीनी प्राधिकार के 'नियन्त्रण' में हैं। राष्ट्रपति यासर अराफत को उसके मुख्यालय में ही बन्दी बना दिया गया ताकि वह किसी विदेशी प्रमुख से न मिल सके और अपने आवास से बाहर कहीं न जा सके। फिलिस्तीनियों के प्रतिरोध को समाप्त करने के लिए मिसाइलों, हेलिकाप्टरों, गनशिपों, टैंकों, जेट फाइटरों, बुलडोजरों और आर्थिक नाकेबन्दी का कई बार प्रयोग किया गया। शेरान ने न सिर्फ अराफत को 1982 में ही नहीं मार सकने पर खुलेआम अफसोस जाहिर किया, बल्कि उसे देश निकाला करने की धमकी भी दे डाली। इज्राएलियों ने अराफत को बहिष्कृत व्यक्ति घोषित कर दिया कि उससे न तो अमेरिका और न ही इज्राएल कोई सम्बन्ध रखेंगे। इज्राएल ने फिलिस्तीनियों का खुलेआम ही आह्वान किया कि वे अपने नेतृत्व को बदल दे और ऐसे व्यक्ति को चुन लें जो और ज्यादा गुलाम साबित हो। यानी यह फिलिस्तीनियों के लिए "सरकार में तब्दीली" है। आखिरकार इज्राएली अपने पिट्ठू अब्बास को प्रधानमंत्री नियुक्त करवाने में कामयाब हो गए। इसे फिलिस्तीनी संसद की मंजूरी भी मिल गई। अब 'फिलिस्तीन' के 'राष्ट्रपति' को राज्याध्यक्ष के तौर पर व्यवहार में कोई अहमियत नहीं रह गई।

गौरतलब बात यह है कि अराफत ने चाहा था कि फिलिस्तीनी प्रतिरोध को सिर्फ पत्थर फेंकने वाली लड़ाई तक ही सीमित किया जाए। अब अब्बास एक कदम आगे बढ़कर यह वायदा कर रहा है कि वह *इंतिफदा* को एक निष्क्रिय आन्दोलन में तब्दील कर देगा जोकि बेहद क्रूरतम राज्य इज्राएल के खिलाफ जारी है। वह यह हामी भर रहा है कि फिलिस्तीनी योद्धाओं के जुझारू संगठनों को निशस्त्र बना देगा। इज्राएली यहूदीवादियों के खिलाफ जारी फिलिस्तीनियों की जवाबी हिंसा को समाप्त करना अपना लक्ष्य बताते हुए अब्बास विभिन्न सरकारों से आग्रह कर रहा है कि इस तरह के संगठनों को "वित्तीय व सैनिक मदद" रोक दें। यहूदीवादियों और साम्राज्यवादियों को इससे बढ़कर क्या वफादारी चाहिए। अब्बास जैसे लोग फिलिस्तीनियों को काबू करते हुए उनका दमन करते रहेंगे तो शेरोन की वहां जरूरत ही क्या है? जब फिलिस्तीनी दलालों ने अपनी ही जनता का दमन करने की भूमिका अदा करना शुरू किया तो साम्राज्यवादी और यहूदीवादी कातिलों को और क्या चाहिए? हाल में जोर्डान में सम्पन्न शेरोन, अब्बास और अब्दुल्ला की दूसरी बैठक

की अध्यक्षता करके जॉर्ज बुश शायद दुनिया का सबसे बड़ा खुशनुमा अपराधी बन गया होगा।

इराक पर दुराक्रमण की घोषणा के कुछ ही दिन पहले अमेरिका ने नया रोड मैप की घोषणा की। इराक पर कब्जा करने के बाद पश्चिम एशिया के मामले में बुश ने पहला फैसला जो लिया है वह है फिलिस्तीन-इज्राएल का शिखर सम्मेलन। यह इस चेतावनी का इशारा है कि अमेरिकी दुराक्रमण से बचने के लिए उसके आगे वफादार बनकर सिर झुकाने के अलावा कोई चारा नहीं है। यह ऐसा क्रूर राजनीतिक इशारा है जिसे कोई भी दुराक्रमणकारी करना चाहेगा। अमेरिकी मान रहे हैं कि अरब जगत् को यह चेतावनी इराक पर उनके दुराक्रमण का नतीजा ही है।

नया रोड मैप

इराक पर दुराक्रमण के साथ ही 'फिलिस्तीनी राज्य' के लिए नया रोड मैप सामने आया। फिलिस्तीनी राज्य की 'स्थापना' के लिए बताया जाने वाला यह 'नया' मैप दरअसल न तो नया है और न ही इससे फिलिस्तीनियों को असली आजादी हासिल होने वाली है। यह लगभग वही पुरानी शराब है जो 1993 के समझौते में फिलिस्तीन को राज्य का दर्जा जैसी बात कही गई थी। इसके मुताबिक फिलिस्तीनियों पर ऐसी सरकार शासन चलाएगी जो न तो स्वतंत्र होगी और न ही उसे प्रभुसत्ता होगी। इस तरह की सरकार अमेरिकी साम्राज्यवादियों और यहूदीवादियों के हाथ में फिलिस्तीनी चेहरे वाला औजार बनने के अलावा कुछ भी नहीं होगी। वह उत्पीड़कों के आदेशों के अनुसार ही चला करेगी।

"नया" रोड मैप फिलिस्तीनी जनता पर और ज्यादा क्रूरतापूर्ण जुल्मों का सिलसिला छेड़ देगा। पिछले 4 जून को एरियल शेरोन के साथ बैठक में भाग लेने के लिए जाने से पहले अब्बास ने घोषणा की कि वह फिलिस्तीनी इलाके में तमाम इज्राएल-विरोधी कार्यवाहियों को कुचल देगा। एक शब्द में कहा जाए तो अब्बास साम्राज्यवादियों और यहूदीवादियों के आदेशों का पालन करने में अराफत से बढ़कर वफादारी बरतने जा रहा है। अखाबा (जोर्डान) में सम्पन्न सम्मेलन से बाहर आते हुए अब्बास ने घोषणा की, "मैं फिर एक बार कहता हूं कि हम इज्राएलियों के खिलाफ कहीं भी होने वाली हिंसा और आतंक का विरोध करते हैं।" उसने इन्तिफदा का सफाया करने और उसे एक शान्तिपूर्ण व अहिंसापूर्ण आन्दोलन में तब्दील करने की हामी भर दी।

इत्तेफाक से ही सही, जहां तेल है वहां मुसलमान हैं – तेल के लिए लड़ाई मुस्लिम राज्यों के खिलाफ लड़ाई में बदल गई। बुश ने "धर्म युद्ध" यूं ही नहीं कहा था। हालांकि अगले दिन उसने अपने शब्दों को वापिस लिया लेकिन उसका मकसद साफ है। मध्य एशिया के मुसलमानों पर अचानक हमलों के लिए अफगानिस्तान युद्ध ने सुविधा मुहैया करवाई। इराक युद्ध से अमेरिकी मध्य पूर्व पर और ज्यादा दबदबा कायम करने की कोशिश में हैं। अब अब्बास जैसे फिलिस्तीनी गद्दारों के आगे आने से अमेरिका को यह मौका मिलेगा कि वह यहां पर अपने प्रतिक्रियावाद के गढ़ को और मजबूत बना ले ताकि पूरे अरब जगत् में जनता की क्रान्तिकारी तमन्नाओं को दबाकर रखा जा सके। फिलिस्तीन और इज्राएल के लिए अमेरिका द्वारा बनाया गया रोड मैप उसके पूरे विश्व पर दबदबा कायम करने की विश्वव्यापी राजनीतिक-सैनिक रणनीति का एक अहम हिस्सा है।

यह रोड मैप तथाकथित फिलिस्तीनी राज्य को एक असहाय व दयनीय इलाके में तब्दील करेगा। उसे स्वतंत्र विदेश नीति नहीं होगी। अपनी सरहदों की हिफाजत के लिए उसे कोई सेना नहीं होगी। सिर्फ पुलिस विभाग ही होगा जो जनता को काबू कर सके। एक राज्य के तौर पर टिक सकने के लिए उसे किसी भी प्रकार की वित्तीय बुनियाद नहीं होगी। यह मैप उसे साम्राज्यवादियों की सहायता पर निर्भर करते हुए जीने की मजबूर स्थिति में धकेल देगी जिससे अरब जगत् के, खासकर फिलिस्तीनी समाज के क्रान्तिकरण के आसार ही बढ़ जाएंगे। साम्राज्यवादी यह उम्मीद कर रहे हैं कि इस तरह के रोड मैप से या तो फिलिस्तीन से या फिर अरब जनता से इज्राएल को कोई प्रतिरोध का सामना नहीं करना पड़ेगा। लेकिन अन्तिम विश्लेषण में इसका नतीजा पूरी तरह उलटा होगा।

वर्ष 2005 तक जिस फिलिस्तीनी राज्य का गठन करने की बात की जा रही है वह उतना ही झूठ का पुलिंदा साबित होगा जितना 1997 में, 1999 में और 2001 में हुआ था। इसके पहले भी कुछ मौकों पर सिर्फ एक ही कारण से फिलिस्तीन को राज्य का दर्जा टाल दिया गया क्योंकि उसने फिलिस्तीनियों के उस संघर्ष को नहीं कुचला जो दुराक्रमणकारियों के खिलाफ जारी है। फिलिस्तीनी राज्य का गठन तरह-तरह की वित्तीय सहायताओं के वायदों से, शरणार्थी शिविरों पर बड़े पैमाने पर बमबारी से या यहूदीवादियों द्वारा मचाए जा रहे विभिन्न किस्म के आतंक से नहीं किया जा सकता। बहुत मुमकिन है कि 2005 तक भी ऐसा कुछ भी नहीं होगा जैसा कि अमेरिकी साम्राज्यवादी उम्मीद कर रहे हैं।

फिलिस्तीनी क्रान्तिकारियों से यहूदीवादी कितना भयभीत हो रहे हैं, यह समझने के लिए एक उदाहरण काफी है – वे पूरी गाजा पट्टी को घेर लेते हुए 12 फुट की मोटाई और 6 मीटर ऊंचाई से कुल 1,660 किलोमीटर लम्बी दीवार बना रहे हैं ताकि फिलिस्तीनियों के हमलों को रोका जा सके। कदम-कदम पर इज्राएली फौजी इस दीवार की रखवाली करेंगे। टावर और सुरक्षा के मोर्चे नजदीक-नजदीक बनाए जा रहे हैं। इस दीवार से सटकर एक चौड़ी खाई होगी जिसमें पानी भरा जाएगा और एक कांटेदार तारों की बाड़ भी होगी। कदम-कदम पर बैरिकेडों से भरे इस शांति रोड मैप से अभूतपूर्व हिंसात्मक योजनाओं की बू आ रही है जो फिलिस्तीनी जनता पर लागू होने वाली हैं! दीवार की योजना पर अमल शुरू भी हो गया और काफी हद तक पूरा भी हो गया! यह दीवार गाजा को इस धरती पर सबसे बड़ी कालकोठरी बना देगी और वहां के लोगों को जानवरों से भी बदतर बनाएगी। वे जिस शांति को कायम करने के बारे में बता रहे हैं वह बड़े पैमाने पर लागू की जाने वाली हिंसा का ही नतीजा होगी। इससे जनता पर और ज्यादा क्रूरतापूर्ण हमले होंगे और इसका नतीजा जनता के और बड़े विद्रोहों के रूप में ही होगा।

इस रोड मैप, जिसकी अब तक खुलेआम घोषणा नहीं की गई है, का प्रमुख पहलू यह है कि यह इज्राएली राज्य को वैधता प्रधान करेगा जोकि संयुक्त राष्ट्र संघ की छत्र-छाया में अमेरिका-ब्रिटेन की साजिश के नतीजतन वजूद में आया। "फिलिस्तीनी राज्य" के गठन के लिए इसके पहले की गई सारी कोशिशें अन्य वजहों के अलावा मुख्य रूप से इन समस्याओं के न सुलझ पाने के कारण विफल हो

गई – 1) गाजा पट्टी और पश्चिमी तट में इज्राएली बस्तियों को उठाने का सवाल, 2) जेरूसलेम को फिलिस्तीन की राजधानी बनाने का सवाल, 3) 1967 के युद्ध के चलते विस्थापित हुए फिलिस्तीनी शरणार्थियों को वापिस बुलाने का सवाल और 4) पूर्व में पश्चिमी तट और पश्चिम में गाजा पट्टी के बीच अटूट सम्बन्ध कायम करने का सवाल। विभिन्न नेताओं के बयानों से यह समझा जा सकता है कि इन समस्याओं के हल के लिए यह नया मैप क्या कह रहा है। शेरोन ने बस्तियों को खाली करने पर सहमति जता दी। गाजा और पश्चिमी तट के बीच एक कॉरिडार (शायद एक रोड हो सकती है) के निर्माण के मुद्दे पर बातचीत के लिए सहमति जताई। लेकिन किसी भी नेता ने न तो जेरूसलेम के सवाल का और न ही शरणार्थियों के सवाल का जिक्र किया। जेरूसलेम को दो भागों में बांटने के अमेरिका के सुझाव का इज्राएलियों ने हमेशा विरोध किया। लेकिन अराफत के नेतृत्व वाली फिलिस्तीनी प्राधिकरण ने इसे मान लिया। इस महान प्राचीन शहर को दो भागों में बांटने का प्रस्ताव शायद इस मैप में हो सकता है। और शरणार्थियों के सवाल पर अभी तक दोनों पक्षों ने चुप्पी साध ली है।

इज्राएल के बगल में "फिलिस्तीनी राज्य" का गठन सिर्फ नाम के वास्ते ही होगा, यह बात पहले ही स्पष्ट हो चुकी है क्योंकि उसे कोई सैनिक और वित्तीय आजादी नहीं होगी। लेकिन इस विषय पर अवश्य गौर करना चाहिए कि टैंकों और बुलडोजरों से बन रही यह रोड (मैप) फिलिस्तीनियों को या तो असहाय प्रेक्षकों में बदल देगी या फिर ऐसे योद्धाओं में तब्दील कर देगी जो मौत के खौफ को ताक पर रखकर लड़ेंगे। उन पर यह दबाव डाला जा रहा है कि वे यह मान लें कि इज्राएली मृत्यु-यंत्र अपराजेय है जिसे साम्राज्यवाद का समर्थन हासिल है। फिलिस्तीनियों को यह घोल पिलाई जा रही है कि अगर वे एक दिन शांति से जीने की तमन्ना रखते हैं तो उन्हें इज्राएल की भयानक सचाई को स्वीकारने के सिवाए कोई चारा नहीं है। 1993 की धोखाधड़ी को उन पर बन्दूक की नोक पर थोपी जा रही है। अब्बास ने इस मैप को इस वायदे के साथ मान लिया कि वह अमेरिका और इज्राएल की शर्त के मुताबिक फिलिस्तीनियों को निहत्थे बना देगा।

महान धोखाधड़ी

एक ही जमीन पर दो राज्यों का सिद्धान्त दरअसल व्यापक तबाही पर डाला गया एक परदा ही है। यह सिद्धान्त यह बताता है कि ब्रितानी-अमेरीकी साम्राज्यवादियों और यहूदीवादियों, जो उनकी कठपुतली हैं, ने जनता पर जो जुल्म और अत्याचार किए जनता भूल जाए। यहूदीवादियों ने जिस जमीन पर इज्राएल की स्थापना की वह दरअसल फिलिस्तीनियों की ही थी। आज फिलिस्तीनी जमीन, फिलिस्तीनी राज्य और इज्राएली बस्तियां कहकर जिस शब्दावली का प्रयोग किया जा रहा है वह सब धोखेबाजी ही है। समूचा इज्राएल ही फिलिस्तीनियों से लूटी गई जमीन पर निर्मित एक विदेशी बस्ती है। असल में इज्राएल के लिए कोई जमीन ही नहीं है कि वह एक राज्य के तौर पर रह सके। कथित शान्ति समझौते की जमीन, फिलिस्तीन-इज्राएल शिखर सम्मेलन, शरणार्थियों क सवाल पर कथित प्रस्ताव – ये सब धोखधड़ी की ही बातें हैं। इन्हें प्रसार माध्यम खूब प्रचारित करते हुए विश्व जनता को इज्राएल के रूप में खड़ी चीज को सचाई के रूप में स्वीकारने पर मजबूर कर रहे हैं। फिलिस्तीन के स्वतंत्रता सेनानियों को आतंकवादी के रूप में चित्रित करते हुए उन पर हमले करना, उनके हथियारबन्द संघर्ष को शांति की स्थापना के खिलाफ बताना – ये सब साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी डकैतों के उस गिरोह के काले कारनामे हैं जो झूठ को सच में और सच को झूठ में बदलने में माहिर है। साम्राज्यवादियों के झूठों और षड़यंत्रों का पर्दाफाश करके सचाइयों को बाहर लाने की काफी जरूरत है। 'शांति' – इस सुन्दर शब्द का अर्थ यही है कि फिलिस्तीनियों को अशांति, स्थाई पराधीनता और दुर्भर हालात।

प्राचीन फिलिस्तीन के इलाके में अगर सच्ची शांति की स्थापना करनी है तो सिर्फ एक फिलिस्तीनी राज्य ही असली समाधान है। उसमें सभी धर्मों के लोग जनवादी और धर्मनिरपेक्ष तरीकों में मिलजुलकर रहेंगे। लोगों को साम्राज्यवादियों तथा अन्य प्रतिक्रियावादी ताकतों की सभी दखलंदाजियों को ठुकरा देना चाहिए। दो देश नहीं, एक ही देश होना चाहिए। वह न तो यहूदी और न ही मुस्लिम धार्मिक राज्य होना चाहिए। एक मात्र धर्मनिरपेक्ष राज्य ही फिलिस्तीन में शांति के लिए असली रोड मैप बन सकता है।

फिलिस्तीनियों के वास्तविक राज्य का विरोध न सिर्फ साम्राज्यवादी और यहूदीवादी कर रहे हैं, बल्कि प्रतिक्रियावादी अरब सरकारें भी कर रही हैं। क्योंकि वे डर रही हैं कि फिलिस्तीनी राष्ट्रीयता की मुक्ति से मध्य पूर्व में साम्राज्यवाद-विरोधी क्रान्तिकारी राज्य की स्थापना को बल मिल सकता है। इस प्रकार के राज्य के गठन से इस इलाके के प्रतिक्रियावादी शेकों के राज्यों और सभी किस्म की साम्राज्यवाद-अनुकूल सरकारों की त्वरित पतन की नींव डाली जाएगी। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि प्रतिक्रियावादी अरब सरकारें फिलिस्तीनी मसले पर ऊपरी तौर पर तो हमदर्दी जताती हैं लेकिन उन्होंने अन्दर से फिलिस्तीनियों के संघर्ष को तोड़ने की ही हमेशा कोशिश की। वे समय-समय पर यहूदीवादियों की आलोचना करती हैं ताकि जनता को संतुष्ट किया जा सके और दूसरी तरफ साम्राज्यवादियों के साथ सौदेबाजी करते रहती हैं। दरअसल अरब शासक मालिक से मोहब्बत करते हुए उसके गोद में बैठे कुत्ते से नफरत कभी नहीं कर सकते। इनके रवैये में यह दोगलापन एक बहुत बड़ी धोखाधड़ी पर परदा डाल रहा है। यह "नया" रोड मैप इन देशों को इस दोगलेपन से बाहर लाने की कोशिश कर रहा है। यह मैप इन देशों से मांग कर रहा है कि कथित फिलिस्तीनी राज्य के गठन के बाद वे इज्राएली राज्य की मान्यता दें। खासतौर पर अब जबकि इराक अमेरिका के कब्जे में हो और सिरिया तथा इरान उसके फौरी निशानों की सूची में हों, तो प्रतिक्रियावादी अरब सरकारें अपने दोगलेपन को त्यागने के लिए ही उतावली हो रही हैं ताकि अमेरिकी साम्राज्यवादी डकैतों की "मेहरबानी" हासिल की जा सके।

अब यह देखना बाकी है इस नए रोड मैप में छिपे हुए दमन के चलते इसका तत्काल ही साफ तौर पर विरोध किया जाएगा या निकट भविष्य में। लेकिन हमस, इस्लामिक जेहाद जैसे संगठनों, जिन्होंने हाल के सालों में बहादुर योद्धाओं को बड़ी संख्या में तैयार किया है, ने तीन महीनों तक संघर्ष विराम के सुझाव को मान लिया ताकि यह रोड मैप सुचारू ढंग से लागू हो सके। इसमें एक हद तक अमेरिका के दबावों और धमकियों की भी भूमिका थी। उन्होंने घोषणा की कि अगर इज्राएल "फिलिस्तीनी इलाकों" पर हमले बन्द करेगा और "चुन कर हत्याएं करने" के सिलसिले को खत्म करेगा तो वे "इज्राएली इलाकों" पर हमले करेंगे। इससे एक प्रकार

से इज़्राएली राज्य को और सिकोड़े गए फिलिस्तीन (फिलिस्तीनी इलाकों) को मान्यता ही मिल जाती है। यह ठीक उसी किस्म की दलदल है जिसमें 1987 में अराफत फंस गया था। हमस और इस्लामिक जेहाद द्वारा इसे मान लिए जाने के बाद अल फतह के अल अक्सा ब्रिगेड ने भी इस रोड मैप को मान लिया। गौरतलब है कि सिरिया में मौजूद हमस और इस्लामिक जेहाद के उच्च नेताओं ने इज़्राएल के जेल में बन्दी बनाए गए फिलिस्तीनी नेता बौरघाटी के साथ डेमास्कस में संघर्ष विराम के कागजों पर दस्तखत किया।

अकेले ''फिलिस्तीन की मुक्ति के लिए जन मंच'' (पापुलर फ्रन्ट फर दि लिबरेशन ऑफ पैलस्टाइन – पीएफएलपी) ने ही संघर्ष विराम के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। हालांकि संख्या की दृष्टि से यह संगठन हमस, इस्लामिक जेहाद और अल अक्सा से कमजोर ही है, लेकिन यह आज भी इज़्राएल के अस्तित्व को मानने और घुटने टेकने से दृढ़ता से इनकार करता है। इस संगठन ने दुश्मन के खिलाफ जुझारू संघर्ष ज्यादा नहीं किया। पीएफएलपी के अलावा और भी कुछ छोटे-मोटे संगठन होंगे जो असली पीएलओ (फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन) के घोषणापत्र से जुड़े हुए हों। पीएलओ के घोषणापत्र ने यह स्पष्ट किया था कि इज़्राएल को मान्यता न दी जाए, समूचे प्राचीन फिलिस्तीन में एक जनवादी फिलिस्तीन का गठन किया जाए और फिलिस्तीनी लोगों को अपने अलग-अलग विश्वासों के बावजूद धर्मनिरपेक्षता की स्फूर्ति के साथ जीना चाहिए। क्या पीएफएलपी या अन्य फिलिस्तीनी क्रान्तिकारी फिलिस्तीनी आन्दोलन को सही रास्ते पर दोबारा खड़ा करने में समर्थ होंगे? विश्व भर में, खासतौर पर अरब जगत् में साम्राज्यवादियों और प्रतिक्रियावादियों के चौतरफा हमले की पृष्ठभूमि में इस प्रकार के क्रान्तिकारी पुनरुज्जीवन के लिए माहौल काफी अनुकूल है। **इसके लिए जरूरत इस बात की है कि दुश्मन का प्रतिरोध करने में अत्यधिक संख्या में जनता की भागीदारी पर जोर देते हुए ही, जनता को एक क्रान्तिकारी राजनीतिक दृष्टिकोण की तरफ तथा क्रान्तिकारी फौजी दावपेंच की तरफ लाने के लिए अथक प्रयास किया जाए।**

अगर कोई संगठन अमेरिका के छलपूर्ण रोड मैप के खिलाफ और वह जिस कब्रिस्तान वाली शांति की बात कर रहा है उसके खिलाफ खुलकर आगे आता है तो अब्बास उस पर तीखा दमन लागू करने से नहीं हिचकिचाएगा। इसका नतीजा फिलिस्तीन में गृहयुद्ध ही होगा। उसने इस आशय की चेतावनी पहले ही देकर हमस और दूसरों को मानने को कहा। फिलिस्तीनी प्राधिकरण के कुछ अधिकारी भी कह रहे हैं कि इस तरह की स्थिति बन सकती है। रोड मैप का शक्तिशाली और दृढतापूर्वक विरोध ही अब्बास को फिलिस्तीनी जनता के सामने नंगा करके रख देगा और उसे अलग-थलग कर देगा। रोड मैप की शर्त के मुताबिक फिलिस्तीनी प्राधिकरण के नियंत्रण वाले शहरों से इज़्राएली बलों की सिलसिलेवार वापसी तभी होगी जब अब्बास का शासन फिलिस्तीनी प्रतिरोध को ठीक से नियंत्रित कर सकेगा। अगर इसमें वह विफल होगा तो इन शहरों को यहूदीवादी फिर से कब्जा कर लेंगे। बेतलेहम, रामल्ला, नेबुलुस और गाजा शहरों में इज़्राएली बलों की मौजूदगी दरअसल कुल आक्रमण के तहत आक्रमण है। यह कहा जा रहा है कि इन शहरों में अब तक इज़्राएलियों ने टैंकों, बुलडोजरों, हेलिकाप्टर गनशिपों और मिसाइलों से जो ''पुलिसिया काम'' किया वह काम अब फिलिस्तीनी प्राधिकारण करे। अब्बास के नेतृत्व में फिलिस्तीनी प्राधिकरण इस प्रकार का काम शुरू करेगा तो फिलिस्तीनियों के बीच गृहयुद्ध ही भड़केगा। अमेरिका और इज़्राएल चाह रहे हैं कि यहूदीवादी उत्पीड़न के खिलाफ अगर फिलिस्तीनी प्रतिरोध जारी रहेगा तो यही हो।

चूंकि फिलिस्तीन में क्रान्ति सफल होगी तो इस इलाके में प्रतिक्रियावादी अरब शासन का अन्त होने के पूरे आसार हैं, इसलिए साम्राज्यवादियों ने फिलिस्तीनी प्रतिरोध को खत्म करना ही मध्य पूर्व में अपना बुनियादी राजनीतिक लक्ष्य बनाया है। इसके लिए उन्होंने यहूदीवादी राज्य की हिफाजत को अपना सर्वोच्च कार्यभार के रूप में स्वीकार किया जो इस इलाके में प्रतिक्रियावाद के मजबूत गढ़ बना हुआ है। इसलिए यह समझने के लिए कोई मेहनत नहीं करनी पड़ेगी कि 'फिलिस्तीनी राज्य' को कायम करने के नाम पर फिलिस्तीनी प्रतिरोध को खत्म करने के इरादे से ही यह रोड मैप बनाया गया।

साम्राज्यवादियों के प्रसार माध्यमों ने उन्माद की हद तक प्रचार किया कि इज़्राएल ने इस रोड मैप को स्वीकार कर बहुत बड़ी ''कुरबानी'' दी है। अपनी ''मुश्किलें'' बताने के लिए इज़्राएलियों ने इस रोड मैप पर सौ आपत्तियां और दो दर्जन संशोधन पेश किए। अमेरिका ने इज़्राएलियों की मुश्किलों को दूर करने की घोषणा की। उसने उनकी जांच करके उन्हें काफी हद तक बदल दिया। इराक पर ''विजय'' के बाद मध्य पूर्व में अमेरिका के रोड मैप ने अपनी आलोचकों की प्रशंसा भी हासिल की। यूरोपियन यूनियन, रूस और संयुक्त राष्ट्र संघ अमेरिका के रोड मैप का विरोध नहीं कर सके। उन्होंने इसका समर्थन किया। इसके बावजूद भी कि उनके बीच अराफत को यूरोप और रूस का समर्थन जैसे अन्तरविरोध मौजूद हों, फिलिस्तीनी जनता के खिलाफ अमेरिका के हमले के मामले में वे सब सहमत हैं।

इराक पर आक्रमण समाप्त हो गया। इरान को चेतावनियां जारी कर दी गईं। ऐसी स्थिति में दुनिया की तमाम प्रतिक्रियावादी ताकतें फिलिस्तीन की मुक्ति के खिलाफ दृढ़ता से खड़ी हो गईं। मध्य पूर्व में रोड मैप साम्राज्यवादियों के षड़यंत्रों का एक और भयानक उदाहरण है। यह फिलिस्तीनियों को गंभीर हालात में धखेल देगा। साथ ही साथ, यह दुनिया के तमाम शोषित लोगों को, खासकर अरब लोगों को नजदीक लाएगा। ✸

(.... पृष्ठ 27 का शेष)

तमन्ना की रत्ती भर भी कद्र नहीं करती। इस स्थिति में हमने अपना जनयुद्ध फिर से तीखा कर दिया। नायुद्ध कम तीव्रता वाले संघर्ष की रणनीति को लागू कर रहा है ताकि हमारी पार्टी का सफाया किया जा सके। हाल ही में पार्टी की नलगोण्डा जिला कमेटी के सदस्य कॉमरेड नरसिंह को एसआईबी पुलिस ने हैदराबाद में गोली मार दी। जो लोग चन्द्रबाबू पर हमारे हमले की निंदा कर रहे हैं, उन लोगों से हमारी अपील है कि आप सबसे पहले यह तय कर लें कि क्या आप जनता के हितों के पक्षधर हैं या नहीं। जनता पर हिंसा का प्रयोग करने वाले शासक वर्गों के विरोध में आप आगे आएं। जब जनता पर हिंसा का प्रयोग किया जाता है तब चुप्पी साधे रहकर, जनता की प्रतिरोधी कार्यवाहियों की निंदा करके आप कौन-सा रुख अपना रहे हैं, इसे सब साफ तौर पर समझ रहे हैं। हम सभी जनवाद-पसन्द और अमन-पसन्द लोगों से अपील करते हैं कि आप जनता पर जारी हिंसाचार की खिलाफत करें और उसके खिलाफ आन्दोलन छेड़े।'' ✸

पश्चिण एशिया का सुलगता विवाद – विश्व पर आधिपत्य के लिए महाशक्तियों की कुटिल रणनीतियों का नतीजा

फिलिस्तीन का इतिहास पूरा संघर्षों का इतिहास ही है। फिलिस्तीन, जिसका 2,500 से ज्यादा सालों का इतिहास है, 1516 ई. से पहले विश्व युद्ध तक ओट्टोमन साम्राज्य का हिस्सा था। ओट्टोमन साम्राज्य लाल सागर और काला सागार के बीच मोरक्को से इरान तक फैला हुआ था। इस साम्राज्य के तहत फिलिस्तीन का क्षेत्रफल 25,600 वर्ग किलोमीटर था। फिलिस्तीन में कुछ ईसाइयों और यहूदियों को छोड़कर बाकी सभी अरब मुसलमान ही थे। यह एक कृषि-प्रधान देश है। यह तेल के स्त्रोतों से समृद्ध इलाका माना जाता है। 17वीं और 18वीं सदियों के दौरान इस साम्राज्य का पतन शुरू हो गया। पहले विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटेन ने वायदा किया था कि ओट्टोमनों को हराने में अगर फिलिस्तीन उसका सहयोग करेगा तो वह उसे स्वतंत्रता देगा। फिलिस्तीन ने अन्य अरब देशों के साथ मिलकर ब्रिटेन और फ्रान्स का सहयोग किया जिससे ओट्टोमनों का साम्राज्य पराजित हो गया। लेकिन फिलिस्तीन को स्वतंत्रता नहीं मिली। मध्य एशिया (इसी को यूरोपवासी वासी मध्य पूर्व कहा करते हैं) के अनेक देशों में सदियों से यहूदी रहते आ रहे हैं। जेरूसलेम शहर मुसलमानों, ईसाइयों और यहूदियों का पवित्र स्थल है। ब्रिटेन के समर्थन से फिलिस्तीन में यहूदियों का प्रवास बढ़ता गया। 1930 के बाद जर्मनी में नात्सी सरकार ने यहूदियों का बहिष्कार किया। वो लोग फिलिस्तीन जाकर बसने लग गए। ब्रिटेन दोनों को भी पृथक शासन की सब्ज़बाग दिखाता रहा।

तेल के भण्डारों से समृद्ध पश्चिम एशिया साम्राज्यवादियों की विश्व बाजार पर आधिपत्य की रणनीति में काफी अहमियत रखता है। यही वजह है कि ब्रिटेन ने पूरी कोशिश की ताकि पश्चिम एशिया पर उसका दबदबा बनाया रखा जा सके। इस इलाके के अरबों को काबू करने के लिए उसने यहूदियों का इस्तेमाल करने की साजिश तैयार की। ठीक यहीं पर पश्चिम एशिया के मसले के बीज पड़े थे। तब तक यूरोप में बसे हुए यहूदियों ने अपने लिए अलग देश की मांग से यहूदीवादी राजनीतिक आन्दोलन शुरू किया था। ब्रिटेन इस स्थिति का फायदा उठाया था। उसने तमाम यहूदियों को एक स्वतंत्र देश के गठन का वायदा किया। उस समय के राष्ट्र संघ (League of Nations) ने भी इसका समर्थन किया था। पहले विश्व युद्ध में जर्मनी के नेतृत्व वाले अक्ष राज्यों के गठबन्धन की पराजय के साथ ही तुर्की के अधीन रहे फिलिस्तीन के इलाके को राष्ट्र संघ ने अधीन इलाका घोषित करके उसके शासन की जिम्मेदारी ब्रिटेन को सौंप दिया।

राष्ट्र संघ पर अपनी पकड़ के चलते ब्रिटेन ने फिलिस्तीन को स्वतंत्रता की घोषणा न करते हुए उसे अपने कब्जे में कर लिया। उस समय तक फिलिस्तीनी आबादी में 7,48,000 अरब थे तो यहूदी सिर्फ 58,000 थे। पश्चिम एशिया पर अपनी दूरगामी रणनीति के तहत ब्रिटेन ने फिलिस्तीन में बड़ी संख्या में यहूदियों को बसा दिया। दूसरी तरफ अरबों की राष्ट्रीय एकता को तोड़ने के लिए अपनी बदनाम "फूट डालो और राज करो" वाली नीति लागू कर दी। फिलिस्तीन के पूर्वी इलाकों को और जोर्डान नदी के पश्चिमी तट के इलाकों को अलग करके उस पूरे इलाके को ट्रान्स जोर्डान के तौर पर घोषित किया। उनके बगल में स्थित इरान और साउदी अरब में अपने पिट्ठुओं को गद्दी पर बिठा दिया। इन्होंने अरबों के राष्ट्रीय हितों पर पानी फेरते हुए यहूदी-अनुकूल नीति अपनाई। इससे यहूदियों के प्रवास में कोई रोक-टोक ही नहीं रह गई थी। दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति तक फिलिस्तीन में यहूदियों की संख्या बेहद बढ़ गई। यहूदियों के बस जाने से फिलिस्तीनियों की मुश्किलों का सिलसिला शुरू हो गया। दूसरे विश्व युद्ध के नतीजों और विश्व भर में उपनिवेशवाद के खिलाफ बढ़ रहे जन संघर्षों के चलते साम्राज्यवाद पहले जैसा उपनिवेशवाद को लागू करने की स्थिति में नहीं रह गया। ब्रितानी साम्राज्य को अपने उपनिवेशों से लौट आना पड़ा। उसने 1947 में संयुक्त राष्ट्र संघ को सूचित कर दिया कि वह फिलिस्तीनी इलाके को छोड़ रहा है जिसे उसने 30 सालों तक अपने कब्जे में रखा था। लेकिन वह पश्चिम एशिया पर अपने प्रभुत्व को और अपने हितों को त्यागने को तैयार नहीं था। इसीलिए उसने संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने यहूदियों के पृथक देश के गठन की जरूरत पर जोर दिया जो उसके हितों को पूरा करने वाला वफादार औजार बन सके। अपने दबदबे की बदौलत उसने इस रणनीति को संयुक्त राष्ट्र संघ के जरिए लागू करवाया। कई सालों से ब्रितानी शासकों की कुटिल नीति का शिकार बनते आ रहे फिलिस्तीनी लोगों की स्थिति इससे और भी बदतर हो गई।

संयुक्त राष्ट्र संघ की गद्दारी – इज़ाएल का जन्म

1947 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने एक विशेष कमेटी का गठन किया जो फिलिस्तीनी मसले के हल के लिए अपने सुझाव दे सके। इंसाफ के नजरिए से देखा जाए तो एक देश की संप्रभुता का फैसला करने का हक उसी देश की जनता को होता है। संयुक्त राष्ट्र संघ को सिर्फ इतना ही करना चाहिए था कि वह फिलिस्तीनियों की मातृभूमि के तौर पर मान्यता देते हुए उन्हें आजादी की घोषणा कर दे। यहूदियों की दुराक्रमणकारी नीतियों और अवैध प्रवासों को रोककर उन्हें अपने-अपने इलाकों में भेज देना चाहिए था। या फिर ऐसा वैकल्पिक बन्दोबस्त करना चाहिए था जिससे फिलिस्तीनियों की स्वतंत्रता में कोई आंच न आए। लेकिन संयुक्त राष्ट्र संघ ने फिलिस्तीन के साथ बड़ी गद्दारी की। फिलिस्तीन को आजादी देने की मांग अरब देशों और जनता द्वारा बार-बार की जाने के बावजूद उसने उसका अनसुना कर दिया। आखिर में अंतर्राष्ट्रीय अदालत की सलाह लेने की मांग का भी अनसुना करके संयुक्त राष्ट्र संघ ने फिलिस्तीनी जनता की सारी अपीलों, प्रस्तावों और तमन्नाओं को ठुकरा दिया।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा नियुक्त विशेष कमेटी ने फिलिस्तीन के भविष्य पर फैसला करते हुए दो विकल्पों को आमसभा के सामने पेश किया। एक यह था कि फिलिस्तीन के इलाके को दो टुकड़ों में

बांटकर एक यहूदियों और दूसरा अरबों को दिया जाए। दूसरा प्रस्ताव यह था कि एक संघीय प्रणाली का गठन किया जाए जिसमें दोनों मिलजुलकर रहें। लेकिन 1947 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने ब्रिटेन के दबाव पर एकतरफा ढंग से फिलिस्तीन को दो भागों में विभाजित करने का फैसला किया। संयुक्त राष्ट्र संघ की सर्व प्रतिनिधि सभा के 181वें प्रस्ताव के मुताबिक 14,100 वर्ग किलोमीटर के इलाके, जिसमें 4,99,000 यहूदी और 5,10,000 अरब बसे हुए हैं, को इज्राएल और 11,000 वर्ग किलोमीटर के इलाके, जिसमें 7,49,000 अरब और 10,000 यहूदी बसे हुए हैं, को फिलिस्तीन के रूप में गठित करने का फैसला हो गया। इसके अलावा, संयुक्त राष्ट्र संघ के फैसले में जेरूसलेम और बेत्लेहाम शहरों को विशेष मान्यता देकर उन्हें अलग रखने तथा 1948 के अक्टूबर माह तक दो देशों के गठन करने को कहा गया। इस प्रस्ताव से पहले फिलिस्तीन में यहूदी एक-तिहाई भी नहीं थे। उनके स्वामित्व में 7 फीसदी जमीन भी नहीं थी। लेकिन इस प्रस्ताव से यहूदियों के हाथों में 56 फीसदी जमीन चले जाएगी। इस प्रकार घोर नाइंसाफी करने वाले इस प्रस्ताव का फिलिस्तीनियों ने जमकर विरोध किया। लेकिन साम्राज्यवादियों की कुटिल नीति का हू बहू पालन करने वाले संयुक्त राष्ट्र संघ ने फिलिस्तीनियों की मांग पर कान ही नहीं दिया। इससे फिलिस्तीनी राष्ट्र धोखाधड़ी और विभाजन का शिकार बन गया।

1948 में यहूदियों ने संयुक्त राष्ट्र संघ को भी ताक पर रखकर एकतरफा ही फिलिस्तीन के इलाके में अपनी आजादी की घोषणा करके इज्राएल देश का गठन कर लिया। इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का उल्लंघन करके अस्तित्व में आने वाले इज्राएल को ब्रिटेन और अमेरिका ने पूरी मदद की घोषणा करके उसे और उकसा दिया। इस समर्थन से इज्राएल ने उन इलाकों पर भी हमला करके कब्जे में ले लिया जिन्हें मिलाकर फिलिस्तीन का गठन करना प्रस्तावित था। तब तक ठगे से और निहत्थे रहे फिलिस्तीनियों पर अन्धराष्ट्रवाद को सिर पर उठाने वाले यहूदियों की इज्राएली सेना टूट पड़ी थी। उस समय इज्राएल द्वारा मचाई गई तबाही, आतंक और अमानवीय नरसंहारों में हजारों फिलिस्तीनियों की जानें गईं। जो मरने से बचे थे उन्हें सारी संपत्तियों को छोड़कर जान हथेली पर लेकर भागना पड़ा। फिलिस्तीन का तीन-चौथाई हिस्सा इज्राएल ने छीन लिया। जेरूसलेम पर हमला करके उसके एक हिस्से को कब्जे में लिया। ट्रान्स जोर्डान पर हमला करके पश्चिमी तट, पूर्वी जेरूसलेम और मिश्र के गाजापट्टी को भी कब्जे में ले लिया। अमेरिका और ब्रिटेन द्वारा दिए जा रहे सैन्य प्रशिक्षण और अत्याधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से इज्राएल ने जितनी अमानवीय कार्यवाहियां कीं उनका कोई हिसाब ही नहीं है। अरब लोगों का खून बहाकर वह पश्चिम एशिया में एक महाशक्ति के रूप में उभरा है। उसने जिस जिस इलाके पर कब्जा किया वहां से फिलिस्तीनियों को जबरन भगा दिया। अमानवीय हंतक कार्यवाहियों के बीच ही और दुराक्रमणकारी युद्धों के साथ ही इज्राएल ने जन्म लिया। तब से लेकर आज तक उसके चरित्र में कोई बदलाव नहीं आया। एक जमाना था जब यूरोप के कई देशों में इन्हीं यहूदियों को नात्सी हिटलर के हत्यारे गिरोहों ने अमानवीय हिंसा और जुल्म का शिकार बनाया था। नजरबन्दी शिविरों में उनके सामूहिक कत्लेआम किए गए थे। वह कत्लेआम इतिहास में एक दाग के रूप में अंकित हो गया। लेकिन आज वही यहूदी अपने नात्सीवाद को अपने सिर पर उठाकर नव नात्सी बन कर एक अन्य राष्ट्रीयता का उसकी अपनी ही जमीन पर उत्पीड़न कर रहे हैं, इसे इतिहास कभी माफ नहीं करेगा। ✸

30 अगस्त 2003

एरियल शेरान कौन है? और वह भारत क्यों आया था?

इज्राएल का प्रधानमंत्री एरियल शेरान का राजनीतिक जीवन तब शुरू हुआ जब उसने अपनी 14 साल की उम्र में हगनाह में सदस्यता ली थी। हगनाह एक दक्षिणपंथी यहूदी संगठन था। फिलिस्तीनी जनता पर हिंसात्मक हमले करना उसका मुख्य काम था। 1953 में शेरान ने 'यूनिट 101' की बागडार संभाल ली। फिलिस्तीनी गांवों पर हमला करके उन्हें खाली कराना इस यूनिट का काम था। शेरोन की अगुवाई में किए गए हमलों में सैकड़ों स्त्री-पुरुषों का कत्लेआम किया गया था। ग्राम किब्या में किए गए एक अमानवीय हमले में 45 घरों को तबाह करके 65 लोगों की हत्या कर दी गई थी। शेरोन की हिंसात्मक प्रवृत्ति के बारे में दुनिया को फिर एक बार तब मालूम हुआ जब 1957 में उसने पैराट्रूप ब्रिगेड कमाण्डर की हैसियत से मिश्र के 270 युद्धबन्दियों की हत्या कर दी थी।

हर हिंसात्मक गतिविधि के साथ शेरोन में हिंसात्मक प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही थी। 1971 में उसने गजापट्टी के गांवों को तबाह करते हुए लोगों को चुन-चुनकर मार डालने की नीति अपनाई। उसने 100 से ज्यादा फिलिस्तीनी स्वतंत्रता सेनानियों की हत्या करवाई। 1982 तक शेरोन का हिंसात्मक अभियान अपने चरम पर पहुंचा था। उस वर्ष इज्राएल के रक्षा मंत्री के नाते उसने लेबनान पर हमला करके लगभग 30 हजार लोगों की हत्या की। इनमें आधा से ज्यादा महिलाएं थीं। इसी मौके पर 1982 में सितम्बर 16 और 17 को सब्रा और साटिला नामक शरणार्थी शिविरों पर हमला करके 2,750 लोगों की हत्या करवाई। यहां तक एक इज्राएली जांच आयोग ने भी इस हत्याकाण्ड के लिए एरियल शेरोन को ही जिम्मेदार ठहराया। इस जघन्य अपराध के लिए शेरोन पर बेल्जियम की अदालत में मानवता के खिलाफ अपराध का मुकदमा दर्ज हो गया। लेकिन अमेरिका के दबाव के चलते यह मुकदमा आगे नहीं बढ़ पाया। दुनिया के अत्यधिक देशों की राजधानियों में जिस कातिल का किसी प्रकार का स्वागत ही नहीं किया जाता उस खूंखार जानवर ने हाल ही में भारत का दौरा किया।

एरियल शेरोन के भारत आने पर कई लोगों और कई जन संगठनों ने अपना विरोध प्रकट किया। लेकिन धार्मक कट्टरतावादी भाजपा ने लाल कालीन बिछाकर उसका गर्मजोशी के साथ स्वागत किया। इस दौरे के पीछे दोनों देशों के लुटेरे शासक वर्गों के कई राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थ छिपे हुए थे। खासतौर पर सैनिक क्षेत्र में इज्राएल भारत का सबसे बड़ा आपूर्तिकर्ता बन चुका है। जिस तरह से इज्राएल मध्य पूर्व में अमेरिका के पिट्ठू के तौर पर और स्थानीय जालिम के तौर पर उभर चुका है, ठीक उसी तरह भारत भी दक्षिण एशिया में अमेरिका के वफादार के तौर पर तथा क्षेत्रीय सरदार के तौर पर उभरने की कोशिश कर रहा है। गौरतलब है कि इन दोनों देशों की दोस्ती के पीछे अमेरिका का हाथ है। एरियल शेरोन के भारत आने का एक और मकसद यह भी था कि अमेरिका की मदद में इराक को अपनी सेनाएं भेजने पर भारत को मनवाया जाए। ✸

इराकी जनता के प्रतिरोध से अमेरिकी साम्राज्यवाद के दिल में हड़कंप

इराक एक और वियत्नाम बन रहा है। इतिहास से सबक सीखने से इनकार करने वाले अमेरिकी साम्राज्यवादी इराकी धरती पर इसकी कीमत चुका रहे हैं। जैसा कि इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुस्सेन, जो अपदस्थ होने के बाद अब अमेरिकी बलों द्वारा गिरफ्तार किए गए, ने पहले ही चेताया था, बगदाद सचमुच अमेरिकियों का कब्रगाह में बदल रहा है। जिस साम्राज्यवादी मीडिया ने इराक पर दुराक्रमण के बाद सद्दाम के पुतले को गिराते हुए लोगों द्वारा जश्न मनाए जाने की खबरें प्रसारित की थीं, अब उसी साम्राज्यवादी मीडिया को हर दिन अमेरिका पहुंच रहे 'लाशों के झोलों' का हिसाब बताने पर मजबूर होना पड़ रहा है। इसके बावजूद भी कि अमेरिका और ब्रिटेन ने हजारों टन विनाशकारी बमों और सैकड़ों मिसाइलों का प्रयोग करके बेहिसाब तबाही मचाई हो, इराकी जनता के मनोबल में थोड़ा भी पतन नहीं हुआ। लगभग एक दशक तक इराक पर थोपे गए अमानवीय प्रतिबन्धों के चलते इराकी जनता को अनगिनत मुसीबतें झेलनी पड़ीं। जीवन-रक्षक दवाइयों और बच्चों के लिए दूध के अभाव में लाखों लोग, खासतौर पर महिलाएं और बच्चे असामयिक मौत का शिकार हो गए। ऐसी स्थिति में हुए इस दूसरे दुराक्रमणकारी हमले से इराकियों पर मानो मुसीबतों का पहाड़ ही टूट पड़ा। इसके बावजूद भी इराकी जनता ने अमेरिकी महाशक्ति के सामने घुटने नहीं टेके। इस दुराक्रमणकारी युद्ध के जवाब में लोगों ने छापामार युद्ध की पद्धति से अपना मुक्ति संग्राम शुरू कर दिया। यह संग्राम दिन-प्रतिदिन फैलता और ताकतवर बनता जा रहा है जिससे साम्राज्यवादियों की नींदें उड़ रही हैं। अमेरिकी सेनाओं पर आए दिन आत्मघाती हमले और अन्य छापामार हमले हो रहे हैं। बहादुराना कुरबानियां देते हुए इराकी जनता द्वारा किए जा रहे ये हमले खुद साम्राज्यवादियों की ही बातों में कहा जाए तो "रोजाना औसतन 10 हमलों" से शुरू होकर, धीरे-धीरे "रोजा औसतन 20 हमलों' तक बढ़ गए और 13 दिसम्बर को जब सद्दाम हुस्सेन अमेरिकी बलों के हाथों बन्दी बनाए गए तब तक "रोजा औसतन 50 हमले" होने लगे। इन हमलों को शुरू में "जेलों से रिहा किए गए कुछ अपराधियों द्वारा की जा रही छिटपुट अराजक कार्यवाहियां" कहकर काट देने वाले अमेरिका के सैन्य और प्रशासनिक अधिकारियों को अब यह मान लेने पर मजबूर होना पड़ा कि "अब हम एक मुकम्मल छापामार युद्ध का सामना कर रहे हैं।" 20 मार्च को इराक पर अमेरिका के दुराक्रमण के बाद वहां पर जारी घटनाक्रम दुनिया की उत्पीड़ित जनता को बेहद उत्साहित कर रहा है। इराक की घटनाओं से अतीत के उस मुक्ति-संग्राम की याद ताजा हो रही है जिसे वियत्नाम की बहादुर जनता ने अमेरिकी दुराक्रमणकारी बलों के खिलाफ लड़ा था। अब दुनिया भर की जनता माओ के इस कथन को अच्छी तरह से समझ रही है कि **साम्राज्यवाद ऊपरी तौर पर कितना ताकतवर भी क्यों न लगे, लेकिन वह दरअसल कागजी बाघ ही है।**

बग्दाद में एक अमेरिकी टैंक को तबाह करने वाले इराकी सैनिक का अभिनन्दन करते हुए जश्न मनाती एक इराकी महिला

धीरे-धीरे तेज होता जन प्रतिरोध

अमेरिकी और ब्रितानी सेनाओं ने अपने पास मौजूद अत्याधुनिक हथियारों और अन्य फौजी साजो-सामान के जरिए इराक पर अंधाधुंध हमले किए। हवाई जहाजों के जरिए मनमाने बम बरसाए। इराक के पास सामूहिक विनाश के हथियार होने के बहाने इस युद्ध को छेड़ने वाले साम्राज्यवादियों ने इराक में आवसीय इलाकों, अस्पतालों, पानी की परियोजनाओं, पुलों, बिजली परियोजनाओं आदि पर बेहद विनाशकारी बमबारी करके हजारों लोगों को मौत की नींद सुला दी। एक अनुमान के मुताबिक इस दुराक्रमणकारी युद्ध में लगभग 25 हजार इराकियों की जानें गईं। सम्पत्तियों की तबाही का कोई हिसाब ही नहीं। युद्ध के चलते लगभग एक करोड़ लोगों को रोजगार के अवसर गंवाने पड़े। "इराकियों को आजादी" दिलवाने का ढिंढ़ोरा पीटते हुए इस दुराक्रमणकारी युद्ध की रचना करने वाले साम्राज्यवादियों के कब्जे के बाद इराकी जनता को कम से कम पीने के लिए पानी भी नहीं मिल रहा है। सद्दाम के शासन को ढहाकर इराक में जनवाद की स्थापना करने का स्वांग बनाने वाले इन साम्राज्यवादी डकैतों ने लोगों को रोटी, कपड़ा, ईंधन, बिजली जैसी न्यूनतम सुविधाओं से भी वंचित कर दिया। कई हजारों सालों से जमी हुई एक सभ्यता को ही तबाह करने के नापाक इरादे से किए गए इस युद्ध को मानवता के खिलाफ युद्ध कहना शत प्रतिशत मुनासिब होगा।

लेकिन इराकी जनता ने इन सब को धैर्य के साथ झेल लिया। अमेरिकी बलों का हर मुमकिन तरीके से मुकाबला करना शुरू किया। लोग कई छापामार ग्रुपों में संगठित हो गए। हथियारबन्द हो गए। नागरिक सुविधाओं की मांग करते हुए कई जुझारू प्रदर्शन किए। खुलेआम सड़कों पर आकर अमेरिकी सेनाओं के जुल्म-अत्याचारों के खिलाफ नारेबाजी करना वहां रोजमर्रा का नज़ारा बन गया। सद्दाम के शासन में मंत्री या फौजी अफसर के पद पर काम करने वाले लोगों और बाथ पार्टी के कुछ नेताओं ने जन प्रतिरोध को संगठित किया। शिया मुसलमानों के कुछ ग्रुप भी विदेशी सेनाओं के खिलाफ छापामार युद्ध चला रहे हैं। अल फरूक़ ब्रिगेड नामक एक छापामार संगठन ने अमेरिकी बलों पर कई शानदार व जुझारू हमले किए। साथ ही, अलग-अलग अरब देशों से आए हुए वलन्टियर भी इराकियों के जन प्रतिरोध में भाग ले रहे हैं। व्यापक पैमाने पर हो रहे इन छापामार हमलों से असुरक्षा की भावना से ग्रसित होने वाले अमेरिकी सैनिक इराकी जनता पर उन्मादपूर्ण हमले कर रहे हैं। बिना किसी उकसावे के ही गोलियां चलाना, मनमाने ढंग से लोगों को मार डालना, महिलाओं के साथ बलात्कार, तलाशी मुहिम, प्रदर्शनकारियों पर गोलीबारी

करना आदि अमेरिकी सेनाओं के रोजमर्रा के काम बन गए। अमेरिकी बल पाशविक हमले कर रहे हैं ताकि इराकी लोगों के प्रतिरोध को दबा दिया जा सके। इसके बावजूद इराकी जनता अटूट आत्मविश्वास के साथ, अपनी मातृभूमि की मुक्ति के लिए अनमोल कुरबानियां देते हुए साम्राज्यवादियों के दिल में हड़कंप मचा रहे हैं। विदेशी दुराक्रमण को समाप्त करने के लिए इराकी स्त्री-पुरुष मानव-बम बनकर अपने प्राणों को तिनके के समान न्यौछावर कर रहे हैं।

अमेरिकियों की रणनीति को मिली ठोकर

इराक पर अमेरिका के कब्जे के बाद इराकी सेना नाटकीय अंदाज में गायब हो गई। सैनिक अपने हथियारों के साथ लोगों में घुलमिल गए। परम्परागत युद्ध से अमेरिका का मुकाबला करना नामुमकिन है, इस सचाई को समझकर उन्होंने पहले ही तैयारियां कर लीं ताकि अमेरिका को दीर्घकालिक छापामार युद्ध में घसीटा जा सके। अमेरिका का यह घमण्ड कि वह अपने पास मौजूद ढेरों शस्त्रास्त्रों से किसी भी देश को घुटने टेकने पर मजबूर कर सकता है, इराक में बुरी तरह चोट खा गई। इसके पहले, 1991 में जब उसने इराक पर पहला दुराक्रमणकारी युद्ध किया था और 1998 में जब उसने युगोस्लोविया पर और 2001 में अफगानिस्तान पर हमला किया था, तब उसने हवाई बमबारी करके इन देशों में व्यापक तबाही मचाकर उन पर काबू पाने की रणनीति अपनाई थी। वियत्नाम में अपने कड़वे अनुभवों के बाद से अमेरिका जहां तक सम्भव हो जमीनी युद्ध से बचता आ रहा है। चूंकि अफगानिस्तान में उसे नार्दर्न एलिएन्स के रूप में दलाल तैयार मिले थे, इसलिए वहां जमीन पर लड़ाई किए बिना ही तालिबान के शासन को खत्म करने में कामयाब हुआ था। वर्तमान इराक युद्ध में भी उसने इसी प्रकार की रणनीति अपनाने की योजना बनाई थी ताकि वियत्नाम जैसा अनुभव फिर से झेलना न पड़ सके। अमेरिका ने सोचा था कि हवाई हमलों के जरिए ज्यों ही इराक पर शिकंजा कसा जाएगा, तुरन्त ही अपने पिट्ठू देशों से सेनाओं को बुलाकर तैनात करवाया जाए ताकि अपने सैनिकों की मौतों को टाला जा सके। लेकिन फ्रान्स, जर्मनी इत्यादि अमीर देशों के साथ-साथ भारत जैसे गरीब देशों ने भी लोगों के विरोध से डरकर अमेरिकी कमान में अपनी सेनाओं को इराक भेजने से इनकार कर दिया। इससे अमेरिका को निराशा ही हाथ लगी। जिस जमीनी लड़ाई से वह कन्नी काट रहा था, आज ठीक उसी लड़ाई में वह बुरी तरह फंस गया।

सैन्य अनुमानों में उलट-फेर

सबसे पहले अमेरिका और ब्रिटेन को कूटनैतिक पराजय तब झेलनी पड़ी, जब सुरक्षा परिषद में इराक पर दुराक्रमण को मंजूरी मिलने की उनकी उम्मीदों पर फ्रान्स और रूस के विरोध के चलते पानी फिर गया। इससे उन्हें गुप्त रूप से बैठक करके बहुत कम देशों के समर्थन से एकतरफा ही युद्ध में उतरना पड़ा। अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने इस बात पर न सिर्फ यकीन ही किया बल्कि लोगों को भी यकीन दिलाने की कोशिश की कि ज्यों ही उनकी सेनाएं इराक में कदम रखेंगी, सद्दाम के शासन से तंग आ चुके इराकी लोक और खासतौर पर सद्दाम के कट्टर दुश्मन समझे जाने वाले शिया मुसलमान उनका फूलों से स्वागत करेंगे और उनकी सेनाएं बग्दाद में बेरोकटोक ही कदम रख लेंगी। लेकिन न तो ऐसा कोई स्वागत और न ही शियाओं का बहु-प्रचारित विद्रोह देखने को मिला। उन लोगों ने भी अमेरिका की उम्मीद के मुताबिक मदद नहीं की जिन्हें अमेरिका के पिट्ठू माने जाते हैं।

साम्राज्यवादियों ने यह भ्रम भी पाले रखा था कि इराक जल्द ही घुटने टेक देगा। अमेरिकियों ने खुलेआम ही यह घोषणा की कि वे तीन-चार हफ्तों में इराक पर पूरी तरह कब्जा कर लेंगे। लेकिन शुरू से ही अमेरिका के सैन्य अनुमानों में भारी उलट-फेर होता आ रहा है। अमेरिका को इराक युद्ध में "विजय" हासिल करने की घोषणा करने में पूरे 50 दिन लग गए। लेकिन मजे की बात यह है कि इस "विजय" के बाद ही असली युद्ध – मुक्ति युद्ध – शुरू हो गया। 30 हजार सेनाओं के जरिए इराक को काबू करते हुए तीन महीनों के भीतर कठपुतली सरकार खड़ा कर सकने का सपना देखने वाले अमेरिकी साम्राज्यवादियों को नाकामी ही हाथ लगी। अभी भी इराक में डेढ़ लाख से ज्यादा सेनाओं के मौजूद रहने के बावजूद अब और 30 हजार सेनाओं को वहां भिजवाने की तैयारियां चल रही हैं। ब्रिटेन, स्पेइन, जापान, दक्षिण कोरिया, इटली आदि देशों की दसियों हजार सेनाएं जो वहां मौजूद हैं सो अलग। हर दिन कहीं न कहीं अमरिकी सैनिक इराकी छापामारों के हाथों मारे जा रहे हैं और उनकी लाशें अमेरिका पहुंच रही हैं। इससे अमेरिकी जनता में गुस्सा बढ़ रहा है और सरकार पर दबाव बढ़ता जा रहा है। इससे अमेरिका को 85 देशों से सेनाएं भेजने की अपील करने पर मजबूर होना पड़ा। यहां तक कि बांग्लादेश जैसे बेहद गरीब देश से भी उसकी सेनाएं भेजने की अपील करनी पड़ी।

दुष्प्रचार की आंधी को विश्व जनता ने किया नाकाम

अमेरिका और ब्रिटेन ने इराक पर दुराक्रमण के लिए विश्व जनता की मंजूरी हासिल करने के लिए जी-तोड़ कोशिश की। अपने टुकड़ों पर पलने वाले प्रसार माध्यमों का इस्तेमाल करते हुए उन्होंने झूठों को बड़े पैमाने पर प्रचारित किया। गोबेल्स के इस फासीवादी सिद्धान्त को कि एक झूठ को सौ बार दोहराने से वह एक दिन जरूर सच हो जाएगा, पूरी तरह अपनाने वाले इन साम्राज्यवादियों ने इस प्रचार की आंधी छेड़ी थी कि इराक के पास सामूहिक विनाश के हथियार मौजूद हैं और इराक में सद्दाम का शासन रहने से दुनिया को बहुत बड़ा खतरा है। दुष्प्रचार का यह हमला इतना व्यापक था कि अधा से ज्यादा अमेरीकी यह मानने लगे थे कि इराक के बारे में बुश जो भी कह रहा है उसमें सचाई है। लेकिन युद्ध के समाप्त होने की घोषणा हुए 8 महीने बीतने के बाद भी इराक में एक भी सामूहिक विनाश का हथियार नहीं पकड़े जाने से अब काफी लोग यह समझ रहे हैं कि यह सारा प्रचार झूठा था। अमेरिका और ब्रिटेन में ऐसे आरोप खुलेआम ही सुनाई दे रहे हैं कि दुराक्रमणकारी युद्ध के लिए जनता की मंजूरी हासिल करने के लिए गलत खुफिया रिपोर्टें पेश करके जनता को छला गया। यहां तक कि विपक्षी पार्टियों ने भी सरकार की यह कहकर निंदा की कि इराक पर दुराक्रमण सही नहीं था और कि अमेरिकी विदेश नीति की दोबारा समीक्षा करने की जरूरत है। अमेरिका की अत्यधिक जनता, खासतौर पर सैनिकों के परिवार और 'वियत्नाम वेटरन्स' कहलाने वाले भूतपूर्व सैनिक यह मांग कर रहे हैं कि इराक से तुरन्त ही सेनाओं को वापिस बुलाया जाए। ब्रिटेन समेत यूरोपीय यूनियन के सभी देशों की जनता यह मान रही है कि विश्व शांति के लिए जार्ज बुश से ही ज्यादा खतरा है। विश्व जनता ने अब और भी साफ तौर पर जान लिया कि इराक पर

हमला इसलिए नहीं किया गया कि उसके पास सामूहिक विनाश के हथियार थे, बल्कि इसलिए किया गया क्योंकि अमेरिका वहां मौजूद तेल के भण्डारों को अपने हाथ में लेकर मुनाफा कमाना चाहता है और इस तरह समूचे पश्चिम एशिया पर अपनी पकड़ मजबूत बनाना चाहता है। पिछले माह जब बुश ने लन्दन का दौरा किया तब लाखों लोगों ने उसका जमकर विरोध किया। यह इस बात का एक उदाहरण भर है कि साम्राज्यवादी देशों में भी जनता बुश और ब्लेइर की नीतियों का कितना विरोध करतेत हैं।

अमेरिका में बढ़ता विरोध

जबसे इराक पर दुराक्रमण की तैयारियां शुरू हुईं तभी से अमेरिकी जनता ने विरोध प्रकट करना शुरू किया। लेकिन अब जबकि "लाशों के झोले" रोजाना अमेरिका पहुंचने लगे, तो अमेरिकी जनता ने बुश की नीतियों का जमकर विरोध करना शुरू किया। इराक से सेनाओं की वापसी की मांग से कई संगठनों का निर्माण हुआ। उन्होंने कई प्रकार के विरोध आन्दोलन शुरू कर दिए। इस विरोध आन्दोलन में इसलिए ज्यादा से ज्यादा लोग शामिल हो रहे हैं क्योंकि अमेरिका के इस दुराक्रमणकारी युद्ध से अमेरिकी जनता को अनगिनत तकलीफों का सामना करना पड़ रहा है। अमेरिकी सेना में, खासतौर पर थल सेना में मौजूद अत्यधिक लोग गरीब अश्वेत परिवारों और लाटिनी अमेरिकी परिवारों से ही हैं। जनता इस बात से बेहद नाराज है कि मुट्ठी भर कार्पोरेट संस्थाओं के मुनाफों की खातिर उनकी बच्चों की बलि दी जा रही है। इराक में मौजूद अनेक अमेरीकी सैनिकों ने रोज-रोज हो रहे छापामार हमलों से असुरक्षा की भावना से ग्रसित होकर और छुट्टियां न मिलने से नाराज होकर खुद को गोली मार ली। इससे सैनिकों के परिवारों में सरकारी नीतियों के प्रति गुस्सा और भी बढ़ता जा रहा है। इस युद्ध के लिए पहले 80 अरब डॉलर खर्च होने का अनुमान था जो अब काफी बढ़ चुका है। यह बोझ भी मुख्य रूप से गरीब अमेरिकियों पर ही लादा जा रहा है। जनता को मिलने वाली कई सुविधाओं में कटौती कर, वेतनों और पेन्शनों में कटौती कर और करों को बढ़ाकर सरकार यह राशि जुटा रही है। इससे जनता में और भी विरोध बढ़ रहा है। हाल ही में हेलिबर्टन नामक एक कम्पनी का यह घोटाला उजागर हुआ कि उसने इराक में लड़ रही अमेरीकी सेनाओं को ज्यादा कीमत पर तेल मुहैया करवाकर 9 करोड़ डॉलर कमा लिया है। इस खबर से अमेरिकी जनता को जले पर नमक जैसा लगा। गौरतलब है कि इस हेलिबर्टन कम्पनी के साथ अमेरीकी उप-राष्ट्रपति डिक चेनी का रिश्ता है। इस प्रकार, यह बात न सिर्फ अमेरिकी जनता, बल्कि समूचे विश्व की जनता अच्छी तरह समझ रही है कि इस युद्ध से कौन मुनाफा कमा रहे हैं, इस युद्ध में किनकी बलि दी जा रही है और इस युद्ध का बोझ कौन उठा रहे हैं।

तेल की रणनीति टांय-टांय फिस्स

यह जगजाहिर है कि इस दुराक्रमणकारी युद्ध के कारणों में मुख्य है इराक के तेल पर नियंत्रण कायम कर लेना। गहरे संकट में फंसी अमेरिकी अर्थव्यवस्था को उबारने के लिए यह युद्ध जरूरी भी था। अमेरिकी सरकार के नीति-निर्देशकों में ज्यादातर लोगों को हेलिबर्टन, बेक्टेल जैसी बड़ी तेल कम्पनियों के साथ सम्बन्ध हैं। और ज्यों ही युद्ध की समाप्ति की घोषणा हुई, इन्होंने 'पुनरनिर्माण' के नाम से इराक पहुंचकर अपनी लुटेरी नीतियों को लागू करने की जो योजना बनाई, उसमें इराकी जनता के शानदार प्रतिरोध के चलते खलल पड़ रही है। इराकी जनता के जबर्दस्त हमलों के चलते अमेरिकी तेल कम्पनियां अभी तक इराक में तेल का उत्पादन शुरू ही नहीं कर सकी हैं। तेल कम्पनियों के दफ्तरों पर, तेल की पाइप लाइनों पर किए जा रहे बम हमलों के कारण इन डकैतों की लुटेरी योजनाएं टांय-टांय फिस्स हो रही हैं।

इराकियों के प्रतिरोध से विश्व पर आधिपत्य जमाने की अमेरिका की रणनीति को काफी हद तक धक्का पहुंचा है। अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने यह सोचा था कि इराक पर दुराक्रमण करके वो पूरे पश्चिम एशिया को अपनी मुट्ठी में कर ले सकेंगे। इराक में एक कठपुतली सरकार की स्थापना करके उसे एक आधार के रूप में इस्तेमाल करते हुए अरब जगत् पर दबदबा कायम करना साम्राज्यवादियों का सपना था। इराक पर दुराक्रमण पूरा होने के बाद सीरिया और इरान पर जरूरत पड़ने से हमला करना या फिर दबाव डालकर इन देशों की सरकारों को गिराकर अपने पिट्ठुओं को सत्ता में बिठाना अमेरिकी डकैतों की सोची-समझी साजिश थी जोकि जगजाहिर भी थी। यही वजह थी कि एक तरफ इराक पर युद्ध करते हुए ही उसने इन दो देशों को धमकियां बढ़ा दीं। जानकारों का अनुमान है कि अमेरिका ने चाहा था कि ज्यों ही इराक उसकी मुट्ठी में आएगा, साउदी अरब में मौजूद उसके सैन्य बलों के एक बड़े हिस्से को वापिस बुलाया जाए। साउदी अरब में अमेरिकी सैन्य बलों पर बढ़ रहे हमलों से और कुल मिलाकर इस देश में अमेरिका के खिलाफ बढ़ रहे माहौल से अमेरिका को खतरा महसूस हो रहा था। अभी तक पश्चिम एशिया में साउदी अरब, कुवैत और क़तर ही ऐसे देश हैं जो अमेरिका के अड्डे कहे जा सकते हैं। लेकिन इराक में जब उसकी नहीं चली तो सारी योजनाएं नाकाम हो गईं। हाल के महीनों में अफगानिस्तान में दोबारा संगठित हो रहे तालिबानियों को कुचलने के नाम पर अमेरिका ने अपनी सैन्य कार्यवाहियों में तेजी लाई है और वह लगातार मासूम लोगों की जानें ले रहा है। इससे अफगानी जनता में और पूरे विश्व की जनता में अमेरिकी साम्राज्यवाद के प्रति तीखी नफरत बढ़ रही है। दूसरी तरफ इराकी प्रतिरोध ने दुनिया को फिर एक बार यह भरोसा दिलाया कि अत्यन्त ताकतवर माने जाने वाले अमेरिकी साम्राज्यवाद का भी छापामार युद्ध के जरिए मुकाबला किया जा सकता है। इस बढ़े हुए विश्वास के साथ निश्चत रूप से विश्व जनता अमेरिका की विश्व पर आधिपत्य की रणनीति को मात दे देगी।

इराकियों के प्रतिरोध के कुछ रोचक नमूने

साम्राज्यवादी इस कोशिश में एड़ी-चोटी का जोर लगा रहे हैं कि इराकी जनता के हमलों को आतंकवादी हमलों के रूप में चित्रित किया जाए। लेकिन ये सारे हमले जनता की मदद से, जनता की सक्रिय भागीदारी व सहयोग से और जनता की तमन्नाओं के मुताबिक ही किए जा रहे हैं – यह बात सचाइयों पर नजर डालने वालों को आसानी से समझ में आएगी। ये हमले विविधता के साथ संचालित किए जा रहे हैं। अमेरिका आदि आक्रमणकारी देशों के सैन्य बलों पर तथा अमेरिका के पिट्ठू बन कर काम कर रहे इराक के राजनीतिक व धार्मिक नेताओं पर जनता हमले कर रही है। इराकी योद्धाओं ने उस होटल पर भी रॉकेटों से हमला किया जहां अमेरिकी रक्षा विभाग के सहायक मंत्री उल्फोविट्ज ठहरा हुआ था। इस हमले में वह बाल-बाल बच गया। इराक में अमेरिकी सैनिकों की मौत की खबरें बुश को काफी परेशान कर रही हैं। उसका डर यह है कि 1991

**"अमेरिकी सेनाओ! हमारा देश छोड़ दो"
अपने बाल-बच्चों के साथ हथियारबन्द विरोध प्रदर्शन में भाग लेती इराकी महिलाएं**

में इराक पर पहले दुराक्रमण युद्ध के बाद हुए चुनावों में उसके पिता की जो दुर्गति हुई थी, शायद 2004 में होने वाले चुनावों में खुद को भी वही झेलनी पड़ सकती है। दूसरी तरफ उसके सैनिकों का मनोबल दिन-प्रतिदिन बुरी तरह गिरता जा रहा है और कुछ सैनिक व अधिकारी इराक से सेना को वापिस बुलाने के बयान खुलेआम ही जारी कर रहे हैं। इन घटनाओं से बुश को ऐसा महसूस होने लगा कि विश्व पर आधिपत्य की उसकी रणनीति को धक्का लग रहा है। इसीलिए बुश को रातोंरात एक चोर की तरह, काले रंग से पुते कांचों वाले एक हवाई जहाज में उड़ान भरकर बग्दाद आकर अपने सैनिकों की पीठ थपथपाकर फिर रातोंरात ही चले जाने पर मजबूर होना पड़ा। बुश इस प्रकार के कई और सस्ते तिकड़म कर रहा है ताकि अमेरिकी मतदाताओं को लुभाया जा सके।

इसके बावजूद इराकियों का प्रतिरोध बिना रुके जारी ही है। देशभक्त इराकियों का यह नारा चारों ओर गूंज रहा है कि विदेशी सेनाएं इराक छोड़ दें। विश्वविद्यालयों के परिसरों में हर दिन पर्चे बंट रहे हैं। हर दिन साम्राज्यवाद के खिलाफ नारे लगाए जा रहे हैं। इराकी लोग अपने घरों को ही बंकर बनाकर और अपने शरीरों को ही बम बनाकर दुश्मन के साथ जूझ रहे हैं। अमेरिका का समर्थन करने वाले देशों के दूतावासों और यहां तक कि संयुक्त राष्ट्र संघ के दफ्तर को भी इराकियों ने नहीं बख्शा जिसने दस साल से ज्यादा समय तक इराक पर अमानवीय प्रतिबन्ध लागू करवाने और उसे विनाश के कगार पर लाने में अमेरिकी साम्राज्यवादियों के हाथों में औजार की तरह काम किया। इराकी छापामार किसी अमेरिकी सैनिक का सफाया करते हैं तो चन्द मिनटों में ही वहां जुट जाने वाले लोग अमेरिकियों की लाशों पर लात मारते हैं। जब छापामार अमेरिकियों की किसी गाड़ी को उड़ा देते हैं तो बाद में उसके मलबों पर चढ़कर लोग खुशी से जश्न मनाते हैं। ऐसी घटनाएं जो सुनाई दे रही हैं, ये सब उनके मन में सुलग रही नफरत की अभिव्यक्ति ही हैं। बग्दाद में जोर्डान के दूतावास पर आत्मघाती बम हमला करके उसे तबाह करने के तुरन्त बाद सैकड़ों लोगों ने उसके मलबों में घुस कर जोर्डान के राजा की तस्वीर को नीचे गिराकर पैरों से रौंद दिया जो तबाह होने से बच गई थी। यह इराकियों की उच्च स्तर की राजनीतिक चेतना का परिचायक था। इराकी लोग जोर्डान के राजा के खिलाफ बेहद गुस्से में थे जिसने इराक पर अमेरिकी दुराक्रमण का समर्थन किया।

गश्त पर निकलने वाले अमेरिकी सैनिकों को स्नाइपरों द्वारा घात लगाकर गोली मारने की घटनाएं इराक में आए दिए घट रही हैं। इराकी छापामार आमतौर पर स्वचालित रॉकेटों और जमीन से हवा में मार करने वाले मिस्साइलों का प्रयोग कर रहे हैं। इतने सुनियोजित ढंग से वे अमेरिकी सैनिकों पर हमले कर रहे हैं जिसकी अमेरिकी कोई कल्पना ही नहीं कर पा रहे हैं। पर अमेरिकी सैनिक इराकी विद्रोहियों को दबाने के बहाने अमानवीय हत्याकाण्ड को अंजाम दे रहे हैं। आए दिन घरों पर छापेमारी करना, संदिग्ध लोगों की व्यापक धरपकड़ या गोली मार देना आदि अमेरिकियों के रोजमर्रा के काम बन गए। इन सभी का मुकाबला करते हुए ही इराकी अपना प्रतिरोध जारी रखे हुए हैं। नीचे पेश की जा रही कुछ कार्यवाहियों से इराक में जारी जबर्दस्त मुक्ति संग्राम की सिर्फ एक झलक भर मिल जाती है।

- 1 मई को युद्ध की समाप्ति की घोषणा से पहले और उसके बाद, अमेरिका के कहे मुताबिक, 500 से ज्यादा अमेरिकी सैनिक मारे गए। सैकड़ों अन्य सैनिक घायल हो गए। गठबन्धन सेनाओं के 70 से ज्यादा सैनिक मारे गए।
- जून में की गई एक कार्यवाही में इराकी छापामारों ने हवाई अड्डे के निकट एक अमेरिकी कैम्प पर मिस्साइलों से आक्रमण किया जिसमें कई हेलिकॉप्टर तबाह कर दिए गए, 20 से ज्यादा अमेरिकी सैनिक मारे गए और 30 से ज्यादा घायल हो गए।
- 25 अक्टूबर को तिकरित शहर में इराकियों ने एक ब्लैक हाक हेलिकाप्टर को गिरा दिया जिसमें सवार एक अमेरिकी सैनिक घायल हो गया।
- 2 नवम्बर को बग्दाद के पश्चिम में स्थित फलूखा में चिनुक नामक अमेरिकी हेलिकाप्टर को गिराया गया जिसमें 16 सैनिक मारे गए।
- 7 नवम्बर को तिकरित शहर के निकट ब्लैक हाक हेलिकाप्टर को इराकी छापामारों ने उड़ा दिया जिसमें छह अमेरिकी सैनिक मारे गए।
- 16 नवम्बर को किए गए एक अन्य हमले में 17 अमेरिकी सैनिक मारे गए और पांच घायल हो गए।
- 30 नवम्बर को किए गए एक और हमले में स्पेइन के 7 खुफिया अधिकारी और जापान के दो अन्य खुफिया अधिकारी कुत्ते की मौत मारे गए।

सद्दाम की गिरफ्तारी से जन प्रतिरोध नहीं रुकता!

13 दिसम्बर को सद्दाम हुस्सेन को उसके गृहनगर तिकरित के निकट एक गांव में अमेरिकी बलों ने बड़े नाटकीय ढंग से गिरफ्तार किया। इसे अपनी शानदार सफलता बताते हुए अमेरिकी शासकों ने जश्न मनाया। जर्मनी, फ्रान्स जैसे साम्राज्यवादी देशों ने भी सद्दाम की गिरफ्तारी का स्वागत किया जो अमेरिका के इस एकतरफा फैसले से नाराज चल रहे थे कि जिन देशों ने युद्ध में उसका सहयोग नहीं किया उन्हें "पुनरनिर्माण" के ठेके नहीं दिए जाएंगे। वे आज अमेरिका के सुर में सुर मिलाकर सद्दाम को कड़ी सजा देने की मांग कर रहे हैं। साम्राज्यवादियों की जूठन खाकर जीने वाले प्रसार माध्यमों ने स्वाभाविक रूप से ऐसी खबरें फैलाईं कि सद्दाम की गिरफ्तारी से खुश होकर इराकी जश्न मना रहे हैं। ये खबरें भी उतनी ही झूठी हैं जितनी सद्दाम के पुतले को गिराने पर इराकियों द्वारा जश्न

मनाए जाने की खबरें थीं। सद्दाम एक तानाशाह जरूर है, लेकिन लगभग डेढ़ दशक से साम्राज्यवादियों के आगे सर न झुकाने वाले और साम्राज्यवादियों के दबाव में न आने वाले नेता के रूप में इराकी जनता में उसकी छवि बनी हुई है। समूचे अरब जगत् में उसकी यह छवि है कि वह इज्राएली यहूदीवादियों, जो अमेरिकियों के पिट्ठू हैं, के खिलाफ खड़ा एक धर्मनिरपेक्षतावादी नेता है। इराकी जनता विदेशी सेनाओं द्वारा आक्रमण करके अपने राष्ट्राध्यक्ष को अपदस्थ करने और अब उसे गिरफ्तार करने की तीखी भर्त्सना कर रही है। वे इसे अपने देश की प्रभुसत्ता पर ही पाशविक हमला मान रहे हैं। अगर सद्दाम हुस्सेन अपराधी है तो उस पर मुकदमा चलाने या उसे सजा देने का अधिकार सिर्फ इराकी जनता को ही है। समूची दुनिया को अपनी मुट्ठी में बांधकर रखने की दरिन्दगी भरी कोशिश करने वाले साम्राज्यवादी डकैतों को किसी भी दूसरे देश के किसी भी नेता को न तो गिरफ्तार करने और न ही उस पर मुकदमा चलाने का नैतिक अधिकार है। दरअसल सबसे पहले अनगिनत युद्ध अपराधों के लिए बुश और ब्लेइर को सजा देनी चाहिए न कि सद्दाम को। बाकी तमाम अपराधों को छोड़ भी दें तो, इस एक मात्र अपराध के लिए भी इन दोनों जोड़ीदारों को सरेआम फांसी पर लटका देना चाहिए जो इन्होंने इराक के पास सामूहिक विनाश के हथियार होने का आरोप लगाते हुए सारी दुनिया को धोखा देकर दुराक्रमण युद्ध छेड़कर हजारों लोगों की जानें लेकर किया। दुनिया भर में कई तानाशाहों की मदद कर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लाखों लोगों की हत्या करने वाले इन अव्वल तानाशाहों को दरअसल जनवाद के बारे में, इन्साफ के बारे में या न्यायिक मुकदमे के बारे में बोलने का नैतिक अधिकार ही नहीं है। सद्दाम की गिरफ्तारी और उसे मौत की सजा देने की अमेरिकी साम्राज्यवादियों की कोशिशों का पूरी दुनिया को विरोध करना चाहिए।

साम्राज्यवादी ये सोच रहे हैं कि सद्दाम की गिरफ्तारी से इराकी लोगों की प्रतिरोधी कार्यवाहियां थम जाएंगी। साम्राज्यवादियों की धमकियों और हमलों से न डिगने वाले नेता का पकड़ा जाना इराकियों के लिए निश्चित रूप से पीड़ादायक ही है। लेकिन जब तक विदेशी दुराक्रमण जारी रहेगा, जब तक इराक की धरती पर पराए देशों की सेनाएं मौजूद रहेंगी और जब तक साम्राज्यवादी इराक के संसाधनों को लूटते रहेंगे तब तक इराकी लोगों का प्रतिरोध जारी ही रहेगा। दरअसल यह सोचना गलत ही होगा कि इराक में छापामार हमले सिर्फ सद्दाम के कारण या बाथ पार्टी के कारण हो रहे हैं। कई मिलिटेन्ट संगठन और अन्य पार्टियां अलग-अलग और तालमेल के साथ भी ये हमले कर रही हैं। विश्व जनता को चाहिए कि वह इराकी लोगों का तहेदिल से समर्थन करे जो अपने देश की मुक्ति के लिए लड़ रहे हैं। उनके संघर्षों के प्रति भाईचारा प्रकट करना चाहिए। दुनिया के समूचे लोगों को साम्राज्यवाद के खिलाफ, खासतौर पर अमेरिकी साम्राज्यवाद के खिलाफ जुझारू संघर्ष छेड़ देने चाहिए, जो नम्बर एक दुश्मन है। लोगों को अपने-अपने देशों में मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद की रोशनी में जारी जनयुद्धों, क्रान्तिकारी आन्दोलनों, राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों तथा अन्य जन आन्दोलनों में भाग लेते हुए साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष को तेज करना चाहिए। अमेरिकी साम्राज्यवादी दैत्य पर चारों ओर से और सांझे तौर पर चोट करना होगा। अमेरिकी-ब्रितानी उत्पादों का बहिष्कार करना और इन देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को मार भगाना हमारे संघर्ष का स्वरूप होना चाहिए। दुनिया भर में यह आवाज बुलन्द करनी चाहिए कि इराक से, अफगानिस्तान से और दुनिया के अन्य हिस्सों से अमेरिकी सैन्य बलों को वापिस लो। ✸

13 दिसम्बर 2003

(.... पृष्ठ 29 का शेष)

अंग्रेजी साम्राज्यवाद का मुकाबला करते हुए बस्तर के लोगों ने शानदार क्रान्तिकारी परम्परा कायम की थी। अपने इलाके पर अपना ही हक हो, इसी लक्ष्य से उन्होंने तमाम विदेशी हुक्मरानों का मुकाबला किया था। अपनी सत्ता को टिकाए रखने के लिए उन्होंने साहस के साथ संघर्ष किया। इन संघर्षों का परिणाम ही था 4 फरवरी 1910 को की गई लोक-राज्य की स्थापना की घोषणा। जन आन्दोलनों के इतिहास में इसका काफी महत्व है। बस्तर की जनता की साम्राज्यवाद-विरोधी राजसत्ता का प्रतीक था भूमकाल। अब जरूरत इस बात की है कि इस संघर्ष के अनुभवों को दण्डकारण्य के लोगों में व्यापक स्तर पर ले जाया जाए। फिलहाल दण्डकारण्य का आन्दोलन आधार इलाके के लक्ष्य से आगे बढ़ रहा है। यहां के लोग लुटेरे शासक वर्गों का प्रतिरोध करते हुए, अनगिनत कुरबानियां देते हुए क्रान्तिकारी इतिहास की रचना कर रहे हैं। इस सिलसिले में गांव-गांव में 'जनता ना सरकार' का निर्माण हो रहा है जो कि जनता की जनवादी राजसत्ता का भ्रूण रूप है। एक तरफ इन संस्थाओं का विस्तार करते हुए और उन्हें मजबूत करते हुए जनता सामन्तवाद, दलाल पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के खिलाफ जनयुद्ध तेज कर रहे हैं। पीजीए के नेतृत्व में लोग बहादुराना ढंग से सरकार के हथियारबन्द बलों का मुकाबला कर रहे हैं। गांवों में सहकारिता के आधार पर जनता में एकजुटता मजबूत हो रही है। क्रान्तिकारी वर्गों की अगुवाई में यह जन सरकार यहां की जनता की जरूरतों को पूरा करने को समर्पित है।

महान भूमकाल की विरासत को आज फिर एक बार दण्डकारण्य के गांव-गांव तक पहुंचाना चाहिए। जनता में साम्राज्यवाद-विरोधी चेतना बढ़ाकर जन संगठनों और मिलिशिया संगठनों में उसे गोलबन्द करना चाहिए। लुटेरी सरकार के खिलाफ जन समस्याओं को लेकर जनता को बड़े पैमाने पर संघर्षों में उतारना चाहिए। सरकारी बलों के दमनचक्र के खिलाफ जनता को हथियारबन्द प्रतिरोध के लिए उत्साहित करना चाहिए। माओ के इस कथन से जनता को गहराई से अवगत कराना चाहिए कि "जन सेना के बिना जनता के पास कुछ नहीं होगा।" जनता को बड़े पैमाने पर पीजीए में भर्ती होने के लिए प्रेरित करना चाहिए। जन सेना का विस्तार करते हुए जनता की प्रतिरोधी क्षमता में इजाफा करना चाहिए। सरकारी बलों का उन्मूलन करते हुए जनता की राजसत्ता को कायम करने का फौरी कार्यभार को पूरा करना चाहिए। 'भूमकाल' के बलिदानी संदेश को गांव-गांव तक फैलाते हुए वर्तमान जनयुद्ध को तेज करते हुए जनता की राजसत्ता की स्थापना की दिशा में मजबूती से कदम बढ़ाएंगे। भूमकाल की विरासत को आगे बढ़ाते हुए साम्राज्यवाद के साथ-साथ सामंतवाद और दलाल पूंजीवाद के खिलाफ अधिक से अधिक लोगों को संघर्ष में गोलबन्द करेंगे। साम्राज्यवादियों के तलवे चाटने वाली वर्तमान लुटेरी सरकारों को ध्वस्त करके भूमकाल शहीदों के सपनों को साकार बनाएंगे। ✸

चन्द्रबाबू पर पीजीए का हमला – जन-विरोधी व तानाशाही नीतियों का खामियाजा

1 अक्टूबर को पीजीए छापामारों की एक विशेष एक्शन टीम ने तिरुपति से तिरुमला जाने वाली घाट रोड में अलिपिरि के निकट आन्ध्रप्रदेश का मुख्यमंत्री चन्द्रबाबू नायुडू पर बारूदी सुरंगों का विस्फोट करके हमला किया। उसकी सुरक्षा के हाई-टेक बन्दोबस्त को तोड़कर पीजीए के लाल योद्धाओं ने बहादुरी और सूझबूझ के साथ यह हमला किया। लेकिन जिस कार में चन्द्रबाबू जा रहा था, वह बुलेट प्रूफ होने के कारण वह बाल-बाल बच गया। लेकिन आज तक इतिहास में यही देखा गया है कि सारे कुख्यात और खूंखार तानाशाह या तो एक न एक दिन जनता के हाथों कुत्ते की मौत मारे गए या फिर इतिहास के कूड़े के ढेर में पहुंचाए गए। अलिपिरि हमले में चन्द्रबाबू भले ही बच निकल गया हो, लेकिन इतिहास की गति को वह बदल नहीं सकेगा।

एक कातिल की आंखों में मौत का खौफ

आन्ध्रप्रदेश में (खासतौर पर उत्तर तेलंगाना इलाके में) पिछले कुछ सालों से आन्दोलन को कई नुकसान झेलने पड़े। इससे शासक वर्गों ने अपने प्रचार माध्यमों से यह प्रचार बड़े पैमाने पर शुरू किया कि अब पार्टी की कमर टूट चुकी है और आन्दोलन कमजोर पड़ चुका है। इस हमले से पीजीए ने यह साबित करके दिखा दिया है कि वह चाहे तो कहीं भी और कितने ही कड़े सुरक्षा बन्दोबस्त को भी तोड़कर जनता की मदद से, जनता की मर्जी पर कितने ही ताकतवर दुश्मन पर भी हमला कर सकती है। इस हमले के बाद देश भर में हिंसा और जवाबी हिंसा के मुद्दे पर कई किस्म की बहसें छिड़ गईं। खास तौर पर उदारपंथी बुद्धिजीवियों ने यह कहते हुए कि हिंसा फिर से हिंसा को जन्म देगी और कि दोनों पक्षों को हिंसा से बाज आना चाहिए, हमेशा की तरह शोषकों की हिंसात्मक नीतियों और शोषित जनता द्वारा अनिवार्यता से की जाने वाली जवाबी हिंसा की कार्यवाहियों को बराबर करने की चेष्टा की। चन्द्रबाबू पर हमले के बाद हमारी पार्टी की आन्ध्रप्रदेश राज्य कमेटी, उत्तर तेलंगाना स्पेशल जोनल कमेटी और आन्ध्र-उड़ीसा सीमान्त स्पेशल जोनल कमेटी ने सांझे तौर पर एक बयान जारी करके इस हमले के कारणों पर रोशनी डाली। पेश है इस बयान का संक्षिप्त सारांश –

"चन्द्रबाबू ने क्रान्तिकारी आन्दोलन को पाशविकता के साथ कुचलने की कोशिश की। राज्य को 'स्वर्णिम आन्ध्र' में बदलने का ढिंढ़ोरा पीटने वाले चन्द्रबाबू ने शारबबन्दी को समाप्त करना, सब्सिडियों को समाप्त करना जैसे जन-विरोधी फैसले किए थे। हमारी पार्टी और कई जन संगठनों पर नायुडू सरकार ने 1996 में प्रतिबन्ध लगा दिया ताकि जनता को नेतृत्व से वंचित किया जा सके। तब से अब तक चन्द्रबाबू की सरकार ने 1400 पार्टी कार्यकर्ताओं और हमदर्दों को क्रूरता से मार डाला। इनमें हमारी पार्टी के सर्वोन्नत स्तर के नेता कॉमरेड श्याम, कॉमरेड महेश और कॉमरेड मुरली भी शामिल हैं। उन्हें चन्द्रबाबू की कायर पुलिस ने 1 दिसम्बर 1999 को बंगलूर में गिरफ्तार करके हवाई जहाज में ले जाकर अगले दिन करीमनगर जिले के कोय्यूर के जंगलों में उनकी जघन्य हत्या कर दी। लोगों की मशहूर गायिका कॉमरेड बेल्लि ललिता को चन्द्रबाबू के भाड़े के हत्यारों ने क्रूरतापूर्वक मारकर उसके जिस्म को 17 टुकड़ों में काट दिया। मानवाधिकार संगठन नेता पुरुषोत्तम और आज़म अली को चन्द्रबाबू ने अपने भाड़े के हत्यारों के जरिए मरवाया। जन नाट्य मंडली का नेता गदर पर गोलियां चलाने के पीछे भी चन्द्रबाबू की पुलिस का हाथ था। आन्ध्रप्रदेश राज्य कमेटी सदस्य कॉमरेड देवन्ना, उत्तर तेलंगाना स्पेशल जोनल कमेटी सदस्य कॉमरेड पद्मक्का, कॉमरेड रामकृष्ण, कॉमरेड कोमुरय्या, आदिलाबाद जिला कमेटी सचिव कॉमरेड ललिता – कई अन्य जन नेता चन्द्रबाबू सरकार के कत्लेआम के शिकार हो गए। चन्द्रबाबू सरकार ने मुखबिरों और कोवर्टों को नियुक्त करके तानाशाही सरकारों से भी बढ़कर दमनात्मक कार्यवाहियां चलाईं।

"जनता की जनवादी तमन्नाओं को पूरा करने में बुरी तरह से विफल होने वाली चन्द्रबाबू सरकार बिजली, सिंचाई का पानी आदि समस्याओं को हल करने में बुरी तरह नाकाम हो गई। लुटेरे वर्गों के आर्थिक हितों को पूरा करने में चन्द्रबाबू अग्रिम पंक्ति में खड़ा हुआ है। विश्व बैंक की शर्तों के तहत सुधारों को लागू करते हुए राज्य को कर्जों के बोझ तले दबा दिया गया। जहां एक तरफ अकाल, महंगाई, बेरोजगारी, भुखमरी आदि समस्याओं से जनता बेहद परेशान है, वहीं चन्द्रबाबू इस कोशिश में है कि सूचना क्रान्ति और पर्यटन को 'विकास' के रूप में दिखाया जाए। फर्जी स्टैम्प पेपर घोटाले में कृष्ण यादव की भूमिका से यह साबित हो जाता है कि चन्द्रबाबू के शासन में भ्रष्टाचार ने कितना व्यापक रूप ले लिया है। पिछले साल जनता ने अपनी बुनियादी समस्याओं के समाधान के साथ-साथ अमन और शांति को कायम करने के इरादे से सरकार पर यह दबाव डाला था कि हमारी पार्टी के साथ बातचीत की जाए। जनता की इस मांग से चन्द्रबाबू हमारी पार्टी के साथ शांति वार्ता के लिए मजबूर हुआ था। लेकिन एक तरफ शांति वार्ता का ढोंग करते हुए ही दूसरी तरफ इतना भयानक दमनचक्र चलाया ताकि बातचीत के लिए अनुकूल माहौल न बन पाए। ऐसी स्थिति में भी हमने अपनी तरफ से जंगबंदी का ऐलान करके बातचीत के लिए पहलकदमी की। इसके बावजूद चन्द्रबाबू के रवैये में कोई बदलाव नहीं आया। पद्मक्का जैसे पार्टी के अहम नेताओं को मुठभेड़ों में मरवाया। दरअसल चन्द्रबाबू को शांति वार्ता की प्रक्रिया में कोई दिलचस्पी नहीं थी। इससे यह स्पष्ट हो चुका है कि नायुडू सरकार जनता की *(शेष पृष्ठ 19 पर ....)*

10 फरवरी – ऐतिहासिक 'महान भुमकाल' दिवस और जन राज का स्थापना दिवस!

वर्तमान 'जनता ना सरकार' के लिए प्रेरणा-स्त्रोत!

विशाल दण्डकारण्य गोण्डों की जन्मभूमि है। पुराण-इतिहासों में दण्डकारण्य का जिक्र मुख्य रूप से बस्तर और जयपुर (उड़ीसा) के जंगली इलाकों के लिए किया गया था। इतिहासकारों का मानना है कि इन जंगलों में इतिहास के शुरूआती दिनों से लेकर जंगली कबीलों के लोग रहते आए हैं और उनकी अपनी गणतांत्रिक शासन प्रणाली हुआ करती थी। मध्य युगों तक आमतौर पर उनका जीवन और राज-काज लगभग इसी प्रकार चलता रहा। 1324 में काकतीयों के हमलों के बाद बस्तर में सामंती शासन की शुरूआत हो गई जो लगभग तब तक चलता रहा जब तक (1856) अंग्रेजों ने इस पर हमला नहीं किया। बाद में यह इलाका औपनिवेशिक शासकों के कब्जे में चला गया था। अपनी प्रशासनिक सुविधा के मद्देनजर अंग्रेजों ने इस इलाके को और यहां के लोगों को बांटा था। वह उसकी राजनीति का हिस्सा था। 1947 में जब शासन अंग्रेजों के हाथों से भारत के जमींदारी एवं दलाल पूंजीवादी वर्गों के हाथों में आया, उसके बाद भाषाई राज्यों के गठन के चलते यह विशाल आदिवासी इलाका अलग-अलग टुकड़ों में बंट गया। सामंती शासकों के आक्रमण से शुरू हुआ विभाजन का यह सिलसिला आगे ही बढ़ता गया। यह आदिवासी इलाका आज की अर्ध सामंती व अर्ध औपनिवेशिक व्यवस्था के तहत विभिन्न राज्यों में विभाजित हो गया, इससे इन लोगों के अस्तित्व पर खतरा बढ़ गया।

इसके अलावा, गोण्डी जनता इस इलाके के साथ-साथ इसके आसपास के इलाकों – यानी छत्तीसगढ़ के अंबिकापुर से लेकर बस्तर तक फैले हुए इलाके में भी तथा महाराष्ट्र के गड़चिरोली के अलावा चन्द्रपुर व भण्डारा जिलों में और आन्ध्र के गोदावरी नदी के तटवर्ती इलाकों में (खासतौर पर आदिलाबाद जिले में) बसी हुई है। उड़ीसा के कोरापुट इलाके में भी गोंडी जनता सदियों से रह रही है। इसीलिए इस पूरे इलाके को गोण्डवाना कहा जाता है और यहां के लोग अब स्वायत्तता की मांग उठा रहे हैं। इतिहास की गहराई में जाकर देखेंगे तो जान पड़ता है कि जब इस भूगोल पर महाद्वीप आकार लेने लगे थे, तब के दक्षिणी अर्ध-गोल को गोंडवाना कहा जाता था। इस प्रकार दण्डकारण्य का यह आदिवासी इलाका इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इतिहासकार मानते हैं कि इस इलाके में बसे मानव समुदाय प्राक् द्रविड़ या प्रोटो अस्ट्रलाइड या फिर इन दोनों समुदायों का सम्मेलन हो सकते हैं। वे पूर्वोत्तर भारत से दो किश्तों में आ चुके होंगे। जो शुरू में आए थे वो शायद आहार इकट्ठा करने की प्रक्रिया के तहत शिकार करते हुए आए होंगे। उन लोगों में गोत्र या गोत्रों के चिन्हों का प्रचलन शुरू नहीं हुआ था। जो दूसरी किश्त में आए थे उनमें गोत्र आदि का विकास हो चुका था।

भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी इलाके के सिंधु घाटी में रहने वाले पूर्व द्रविड़ समुदायों से अलग होकर ईसा पूर्व 1500 में जो लोग आए थे वही लोग बस्तर के इलाके में गोंडी जन समुदायों के रूप में विकसित हो गए, ऐसा जाने-माने इतिहासकार हीरालाल शुक्ल मानते हैं। चूंकि यह इलाका शुरू से ही गोंडवाना कहलाता रहा था, इसी पृष्ठभूमि में यहां बसे हुए लोगों को गोण्ड कहा जाने लगा।

स्थानीय गोंडी लोग शुरू से ही संघर्षशील हैं। आजादी के दीवाने हैं। इस गोंडवाना इलाके में आज एक जबर्दस्त संघर्ष चल रहा है। यह एक महत्वपूर्ण संघर्ष है। वे समाज को बदलने के लिए क्रान्ति लाने और हथियारबन्द होकर लड़ रहे हैं। हालांकि यहां के सारे क्रान्तिकारी लोग गोंडी ही हैं, लेकिन वे कोया, दोरला, मुरिया, माड़िया, हल्बा, भतरा आदि प्रमुख कबीलों में बंट चुके हैं। जहां गोंडी भाषा इन लोगों की मातृभाषा है, वहीं हल्बी भाषा का भी प्रचलन कुछ हद तक है। दुर्भाग्य से, नागरिक युग के आविर्भाव के बाद सदियां बीत गईं लेकिन गोंडों की इस बेहद प्राचीन भाषा की लिपि नहीं बन पाई है। आज तेजी से फैल रही सामंती और साम्राज्यवादी संस्कृति के परिणामस्वरूप आदिवासियों की भाषा और संस्कृति दिन-प्रतिदिन लुप्त होती जा रही हैं। आज तो गोण्डों के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लग गया है।

ईसा के पहले से ब्राह्मणवाद से लड़ते हुए कोने-कोने में फैल चुके बौद्ध धर्म के अवशेष बस्तर में भी पाए गए। यहां के लोगों के रीति-रिवाजों से भी इसका सबूत मिल जाता है। साथ ही, काकतीयों से लेकर यहां पर राज चलाने वाले हिन्दू धर्म के राजाओं के पीछे-पीछे उस व्यवस्था की जाति, देवी-देवता, तीज-त्यौहार आदि रीति-रिवाज भी यहां पर फैल गए। यह मुख्य रूप से आदिवासी इलाका होने के बावजूद समय की धारा में हुए कई परिणामों के चलते गैर-आदिवासी भी इनके साथ-साथ गुजर-बसर करने लग गए। चूंकि इनमें अत्यधिक लोग गरीब या मध्यम वर्ग के थे, इसलिए इन्हें आदिवासियों के साथ घुलमिल जाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। इनमें से कुछ लोग शासक वर्गों का हिस्सा बन कर स्थानीय सम्पन्न वर्गों (कबीलशाहों) में शामिल हो गए।

हमने ऊपर देखा है कि 1324 ई. में काकतीय राजा अन्नमदेव द्वारा बस्तर पर दुराक्रमण करके गोण्ड राजा हरिश्चन्द्र देव की हत्या करके गद्दी पर आसीन होने से पहले यहां की कबीलाई व्यवस्था गणतांत्रिक शासन पद्धति के तहत चला करती थी। उसके बाद विभिन्न राजाओं के आक्रमणों के कारण बस्तर दबता ही गया। 1369-1534 के बीच उड़ीसा के गंगावंशियों ने, 1534-1602 के बीच तेलुगु इलाके के रेड्डी राजाओं और छत्तीसगढ़ के कलचूरों ने, 1602-1625 के बीच कुतुबशाही ने, और 1721-31 के बीच रीवा के चंदेलियों ने बस्तर पर हमले किए

थे। 1777 में बस्तर माराठा राजा भोंसले के अधीन हो गया। चूंकि इन सारे हमलों का बस्तर की जनता ने बहादुरी के साथ मुकाबला किया, इसलिए ऊपरी स्तरों पर कुछ बदलाव होने के बावजूद खुद जनता पर कोई भी राजा सीधा शासन नहीं चला सका।

इस सिलसिले में भोंसले राजाओं के अंग्रेजों के सामन्त बन जाने से 1856 में बस्तर के साथ-साथ आसपास के सारे जंगली इलाका, वह सारा इलाका जिसे आज दण्डकारण्य कहा जाता है, अंग्रेजों के कब्जे में गया। आंग्ल-मराठाओं के शासन के खिलाफ बस्तर के विशाल क्षेत्र में कई विद्रोह हुए थे। इनमें से कुछ प्रमुख ये थे –

1.	**हलबा विद्रोह**	**1774-74**
2.	**भूपालपट्टनम लडाई**	**1795**
3.	**परालकोट विद्रोह**	**1825**
4.	**तारापुर विद्रोह**	**1842-54**
5.	**मेरिया विद्रोह**	**1842-63**
6.	**महान मुक्ति संग्राम**	**1856-57**
7.	**कोया विद्रोह**	**1859**
8.	**मुरिया विद्रोह**	**1876**
9.	**रानी विद्रोह**	**1878-82**
10.	**महान भुमकाल**	**1910**

उपरोक्त सभी विद्रोहों में जनता ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। ये सारे विद्रोह पराए शासन के खिलाफ, मुख्य रूप से अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ हुए थे। लुटेरे शासक वर्गों के खिलाफ विशाल जन समुदायों द्वारा किए गए विद्रोह थे ये। ताकतवर सरकारों के खिलाफ कमजोर लोगों द्वारा किए गए संघर्ष थे ये। इन सारे विद्रोहों में परम्परागत हथियारों से लैस भूखे-नंगे आदिवासियों ने अत्याधुनिक हथियारों से लैस एक ताकतवर सैना के खिलाफ छापामार तरीके से लोहा लिया था। पराई धरती पर कब्जा करने और मनमाने लूटने के लिए आए हुए अंग्रेजों को मार भगाने के लिए स्थानीय जनता ने जान की परवाह न करते हुए संघर्ष किया ताकि यहां पर होने वाले शोषण का अन्त किया जा सके। अंग्रेजी दरिन्दों के खिलाफ भारत में सबसे पहले बगावत का परचम लहराने का श्रेय निश्चित रूप से भारत के आदिवासियों को ही जाता है। उनमें दण्डकारण्य के आदिवासियों का योगदान भी कम नहीं था। उनमें से 1910 का महान भुमकाल (महान जन-क्रान्ति) ऐतिहासिक व शानदार विद्रोह रहा। उस संघर्ष में सैकड़ों लोगों ने अंग्रेजों की गोलियों से अपना सीना अड़ाकर अनमोल कुरबानियां दीं। अंग्रेजों ने तीन-चार साल तक क्रूरतम दमन अभियान चलाया जिससे लोगों को कई यातनाओं से गुजरना पड़ा। महिलाओं के साथ बलात्कार किए गए। जिस किसी ने भी अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया, सभी को अंग्रेजों ने फांसी की सजा देकर मार डाला। इनमें गेन्द सिंह, यादवराव, दुरवाराव, बाबूराव सेडिमेक, वेंकटराव जैसे लोक-नायक शामिल थे जो जमींदारी खादान के थे। विदेशी हुकूमत के खिलाफ यहां के लोगों में भड़के विद्रोह के शोलों से अंग्रेजों के दिल दहल उठे थे। उस समय के जन विद्रोहों का लेखन करके भावी पीढ़ियों तक पहुंचाने का बीड़ा अभी तक किसी ने भी नहीं उठाया। भारत के जनवादी क्रान्ति के आन्दोलन में दण्डकारण्य की जनता की बहादुराना कुरबानियों को इतिहास में समुचित स्थान नहीं मिला है। अपनी कुरबानियों से दण्डकारण्य के संघर्षशील इतिहास में चार चांद लगाने वाले उन योद्धाओं का इतिहास पिछले 20 सालों से यहां संघर्षरत लोग नए सिरे से लिख रहे हैं। आज की संघर्षरत क्रान्तिकारी ताकतें साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्षों के अनुभवों का निचोड़ लेते हुए वर्तमान अर्ध सामंती और अर्ध औपनिवेशिक व्यवस्था के खिलाफ हथियारबन्द होकर लड़ने में इस्तेमाल कर रहे हैं। मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद की रोशनी में भारत की नव जनवादी क्रान्ति को पूरा करने का बीड़ा उठा चुकी भाकपा (मा-ले) [पीपुल्स वार] अब दण्डकारण्य के आदिवासियों के बीच खड़े होकर लुटेरी ताकतों के खिलाफ लड़ रही है। इस पार्टी के नेतृत्व में संगठित हो चुके लोग अब जंगल पर अपने अधिकार के लिए तथा जंगल की सारी सम्पदाओं अपना अधिकार कायम करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। पिछले समय के विद्रोहों के अनुभवों से अब यहां के लोग खुद को संघर्ष के प्रति दोबारा समर्पित कर रहे हैं। क्रान्तिकारी पार्टी के साथ आत्मसात होने में यहां के लोगों को काफी समय लगा। लेकिन चूंकि क्रान्तिकारी ताकतों को जनता पर अटूट विश्वास था और अपनी रणनीति-कार्यनीति पर स्पष्ट समझ थी, इसलिए उनकी मेहनत जल्द ही रंग लाई। स्थानीय जनता में पार्टी की पैठ बन गई।

क्रान्तिकारी पार्टी ने तमाम तरह की लुटेरी ताकतों और उनके भाड़े के टट्टुओं के खिलाफ संघर्ष छेड़ दिया। इस दौरान कई लोगों ने अपनी जान की कुरबानी दी। इन कुरबानियों ने जनता को प्रेरणा दी। लोगों ने क्रान्तिकारी पार्टी को अपना बना लिया। पार्टी जो भी आह्वान देती उसे पूरा करने में लोगों ने कोई कसर नहीं छोड़ी। इस प्रकार जनता और क्रान्तिकारियों के बीच एक मजबूत रिश्ता बन गया। इसके परिणामस्वरूप दण्डकारण्य की जनता ने कई संघर्षों का सिलसिला शुरू कर दिया। जमीन की समस्या को लेकर किसानों ने संघर्ष का बिगुल बजाया। सरकारी जंगल विभाग से लड़कर जंगल काटकर जमीन बना ली और उसमें खेती शुरू कर दी। किसानों के खेतों में सरकार ने कांटेदार बबूल बोने की कोशिश की तो लोगों ने जंगलात वालों को डंडों से मार भगा दिया। किसानों ने जब खेती करके फसल उगाई तो जंगलात वालों ने उसे नष्ट करने का षड़यंत्र बनाया था। पुलिस के साहारे से खेतों में ट्रैक्टर चलाकर फसल नष्ट करने की कोशिश की तो स्त्री-पुरुषों और बच्चे-बूढ़ों ने खेतों में डटे रहकर उन्हें चुनौती दी। खाकियों के नापाक मंसूबों पर किसानों ने पानी फेर दिया। आदिवासी किसानों ने 'जोतने वाले को जमीन' का नारा देकर जान की बाजी लगाकर सरकार के खिलाफ संघर्ष किया।

दण्डकारण्य के आदिवासियों का इस प्रकार अलग-अलग जन संगठनों में सम्मिलित हो जाना और सामंतवाद व दलाल पूंजीवाद पर संघर्ष का परचम फहराना – इससे यहां की राज्य सरकारों पर नगवार गुजरा। यहां के छोटे बच्चे भी हाथों में लाल झण्डे लेकर पुलिस और वन विभाग के अधिकारियों के खिलाफ नारे लगाने लदे तो सरकार ने इसे गंभीरता से लिया। यहां पर विकासमान संघर्षों को कुचलने का षड़यंत्र रचना शुरू किया। नक्सलवादियों की भौतिक रूप से हत्या करने की साजिशें तेज कर दीं। इसके तहत ही पुलिस ने फर्जी मुठभेड़ों में छापामारों को मारना शुरू किया।

इस पृष्ठभूमि में ऐसे हालात बन गए जहां से सरकारी हथियारबन्द बलों का मुकाबला किए बिना जनता के जायज संघर्षों और क्रान्तिकारी आन्दोलन को आगे बढ़ाना तथा जन संघर्ष के फलस्वरूप हासिल उपलब्धियों को टिकाए रखना नामुमकिन था। *(शेष पृष्ठ 26 पर....)*

श्रद्धांजलि

गीदम पुलिस थाने पर पीजीए के हमले के दौरान शहीद हुए कॉमरेड रामदास (साइबी मोडियम) को क्रान्तिकारी सलाम!

आतंकी पुलिस बलों से बन्दूकें छीनकर जन सेना को मजबूत बनाने के इरादे से 13 सितम्बर को पीजीए के छापामारों ने देन्तेवाड़ा के निकट गीदम कस्बे में स्थित पुलिस थाने पर धावा बोल दिया। इस शानदार हमले में तीन पुलिस वाले मारे गए, जबकि छह अन्य घायल हो गए। कुछ अन्य पुलिस वालों ने हथियार डाल कर आत्मसमर्पण किया। छापामारों ने थाने से कुल 13 एसएलआरें, 18 त्रीनॉटत्री रायफलें, 1000 से ज्यादा कारतूस और कुछ हथगोले छीन लिए। जब हमला जारी ही था तब थाने की सहायता में दन्तेवाड़ा से बड़ी संख्या में पुलिस वाले पहुंच गए थे। छापामारों की एक टोली उनसे मुकाबला कर रही थी तो बाकी छापामारों ने हमले को रोककर पीछे हटने का फैसला लिया। तब तक थाने के एक कमरे से कुछ पुलिस वालों की ओर से गोलीबारी जारी ही थी, जिन्होंने आत्मसमर्पण नहीं किया था। पीजीए को इन्हें काबू करने का समय नहीं था। इस वजह से कुछ हथियार और कारतूस भी नहीं छीने जा सके। छापामार अलग-अलग जत्थों में पीछे हट रहे थे। दो सदस्यों वाले आखिरी जत्थे पर जब थाने में मौजूद पुलिस वालों ने गोलीबारी की तो कॉमरेड रामदास ने मौके पर ही दम तोड़ दिया जबकि एक अन्य कॉमरेड को मामूली रूप से चोटें आईं जो दुश्मन पर फायर करते हुए सकुशल वापिस आ गए। हुआ यह था तो पुलिस ने इसे तोड़-मरोड़कर तरह-तरह के बयान देकर खुद की नाकामी को छिपाने की घिनौनी कोशिश की। उनके कुछ बयान ये थे - कि एक नक्सलवादी को उन्होंने छुरी से वार करके मार गिराया, एक पुलिस कर्मी की बेटी ने अपने पिता पर हमला करने आए एक नक्सली को कुल्हाड़ी से मार डाला आदि। और भी झूठ-मूठ का प्रचार किया गया।

कॉमरेड रामदास का जन्म पश्चिम बस्तर डिवीजन में इन्द्रावती नदी के किनारे पर स्थित ग्राम मज्जीमेंड्री में हुआ था। माता-पिता ने उनका नाम साइबी रखा था। यह गांव कई सालों से क्रान्तिकारी आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाता आ रहा है। इस गांव के कई युवक-युवतियां पार्टी और जन संगठनों में शामिल होकर काम कर रहे हैं। बचपन से ही कॉमरेड रामदास पर इसका प्रभाव था। गांव के बाल संगठन में सदस्य के रूप में काम करते हुए ही उन्होंने पूर्णाकालीन कार्यकर्ता बनकर जनता की मुक्ति के लिए काम करने का इरादा बनाया था। मज्जीमेंड्री के निकट एक गांव है वेदिरे जहां कई सालों से पुलिस थाना मौजूद है। 1991-92 के दौरान जनता का दुश्मन महेन्द्र कर्मा की अगुवाई में इस गांव के कुछ जालिम मुखियाओं ने पुलिस के साथ सांठगांठ करके जन जागरण अभियान के नाम से क्रान्तिकारी आन्दोलन के खिलाफ एक दमनकारी अभियान चलाया था। कई गांवों में जन संगठन कार्यकर्ताओं के साथ मार-पीट करना, महिलाओं के साथ बलात्कार करना, अहम जन संगठन नेताओं की हत्या करना, छापामार दस्तों का सफाया करने के लिए खोजबीन करना जैसे कई अमानवीय तरीकों में वह अभियान चलाया गया था। शुरू में तो जनता पीछे हटी थी, लेकिन धीरे-धीरे हिम्मत जुटाकर लोगों ने इस दमन अभियान को बुरी तरह पराजित कर दिया। वेदिरे में पुलिस कैम्प की मौजूदगी के बावजूद लोगों ने वहां के बदमाश मुखिया मासाल का सफाया कर दिया जिससे आसपास के लोगों ने खुशियां मनाईं। कॉमरेड रामदास पर इन सारे संघर्षों का गहरा असर पड़ा था। वह घर पर रहते हुए ही क्रान्तिकारी गतिविधियों में भाग लेने लगे। स्थानीय छापामार दस्ता चाहे जो भी जिम्मेदारी सौंप दे तो वह पूरी निष्ठा के साथ निभाया करते थे। पुलिस के हत्थे चढ़ने से हो सकने वाली मारपीट की रत्ती भर भी परवाह न करते हुए उन्होंने क्रान्तिकारी क्रियाकलापों में सक्रिय भाग लिया। इस सिलसिले में उन्हें बाल संगठन से बढ़कर अन्य महत्वपूर्ण जिम्मेदारी दी गई।

शुरू में जब उन्होंने दस्ते में भर्ती होने का प्रस्ताव सामने रखा, तो स्थानीय जिम्मेवारों ने यह सोचकर टाल दिया कि उनकी उम्र अभी कम है। लेकिन वह ज्यादा जिद करने लगे तो कुछ समय बाद 1999 के आखिर में उन्हें स्थानीय पार्टी ने दस्ते में भर्ती कर लिया। लेकिन जिस धैर्य और सहनशीलता के साथ उन्होंने छापामार जिन्दगी में पेश आने वाली मुश्किलों का सामना किया, उसे देखकर तो किसी को यह आभास ही नहीं हुआ था कि वह छोटा है। दस्ते में अनुशासन का पालन करने में वह खुद को दूसरे कॉमरेडों के लिए एक मिसाल के तौर पर पेश करते थे। बैठकों में जब उनकी कोई आलोचना होती थी तब वह अपनी गलितयों को विनम्रतापूर्वक स्वीकारा करते थे। कुछ माह बाद उन्हें पार्टी सदस्यता दे दी गई। बाद में उन्हें डिवीजन के विशेष छापामार दस्ते में सदस्य के रूप में चुन लिया गया। 2002 में उन्हें उस दस्ते के उप कमाण्डर के रूप में चुन लिया गया। कुछ ही माह पहले उन्हें पार्टी ने एक विशेष काम के लिए चुनकर विशेष छापामार दस्ते से उनका स्थानान्तरण किया था।

सितम्बर 2002 में वेदिरे पुसिस थाने पर किए गए हमले में कॉमरेड रामदास ने रन्नर के रूप में महत्वपूर्ण काम किया। गोलीबारी के बीचोंबीच ही कमाण्डर के आदेशों *(शेष पृष्ठ 31 पर ....)*

(.... अन्तिम पृष्ठ का शेष)

छापामारों का हाथ लगा था। 1998 में बासागूडेम के निकट किए गए जबर्दस्त घात हमले में भी कॉमरेड राजू की अहम भूमिका रही। उस कार्यवाही में 18 पुलिस वालों का सफाया किया गया था। दुश्मन से हथियार छीन लेने के इरादे से राजनांदगांव जिले के छुरिया थाने पर किए गए रेड में और माड़ डिवीजन में आकाबेड़ा और मुहंदी के घात हमलों में भी कॉमरेड राजू ने भाग लिया। दुश्मन के खिलाफ चलाए गए कार्यनीतिक प्रत्याक्रमण अभियानों के तहत कॉमरेड राजू ने कई कार्यवाहियों का कुशल नेतृत्व किया।

कॉमरेड राजू को घर में पढ़ाई का नसीब नहीं हो सका था। लेकिन ज्यों ही वह छापामार दस्ते में भर्ती हो गए, बड़े लगन के साथ पढ़ाई सीख ली। उन्होंने पढ़ाई के साथ-साथ डॉक्टरी काम भी सीखा। पीजीए के सैनिकों को और गांवों में लोगों को दवा-दारू देना भी सीख लिया। उन्होंने एक कम्युनिस्ट लड़ाकू के तौर पर अपने सैद्धान्तिक स्तर को बेहतर बनाने के लिए गंभीरता से अध्ययन किया। खास तौर पर क्रान्तिकारी युद्ध के नियमों को विभिन्न देशों के छापामार युद्ध के अनुभवों को समझने का लगातार प्रयास किया। कॉमरेड राजू हंसमुख, सीधे-सादे और सभी के साथ स्नेहपूर्वक घुलमिल जाने वाले व्यक्ति थे। पार्टी में और पीजीए में वह एक अनुशासनबद्ध कॉमरेड के रूप में जाने जाते थे। गलतियों की आलोचना करने में वह कोई कोताही नहीं करते थे। पार्टी जो भी जिम्मेदारी उन्हें सौंपती तो वह मुस्कराते हुए ही उसे पूरा करने की पूरी कोशिश करते थे। वह पार्टी और पीजीए की कतारों में काफी लोकप्रिय व एक आदर्शपूर्ण नेता थे।

आज दण्डकारण्य आन्दोलन कठिन चुनौतियों का सामना करते हुए आगे बढ़ रहा है। नव जनवादी क्रान्ति के तहत आधार इलाके के निर्माण की ओर मजबूती से कदम बढ़ाते हुए देशवासियों के सामने एक नमूने के तौर पर उभर रहा है। यहां पर जनता की नई राजसत्ता भ्रूण रूप में आकार ले रही है। पर लुटेरे शासक किसी भी कीमत पर इसका गला घोंटने के लिए हाथ धोकर लगे हुए हैं। उन्होंने देश में सामंती व साम्राज्यवादी लुटेरी व्यवस्था को बरकरार रखने हेतु बस्तर में सीआरपी बलों को बड़े पैमाने पर तैनात कर आतंक का ताण्डव मचा रखा है। ऊपरी तौर पर केन्द्र व राज्य सरकारें चाहे कितनी ही विरोधाभासी क्यों न लग रही हों, लेकिन यहां के जन आन्दोलन को कुचलने में तो सभी लुटेरी पार्टियां एकमत हैं। सरकारें यहां पर हमारी पार्टी, पीजीए और जनता के विभिन्न संगठनों को कुचलने के लिए दमनात्मक कार्यवाहियां बढ़ा रही हैं। एक शब्द में कहें तो लुटेरी सरकारों ने क्रान्तिकारी आन्दोलन के खिलाफ अघोषित युद्ध छेड़ दिया है। हमारे आन्दोलन को बचाना है तो इस आक्रमणकारी युद्ध का मुकाबला आत्मरक्षात्मक युद्ध से करना होगा। कई कार्यनीतिक जवाबी हमला अभियानों को चलाकर दुश्मन को नेस्तनाबूद करना होगा। जनता को हजारों की संख्या में जनयुद्ध में गोलबन्द करना होगा। ऐसे निर्णायक मोड़ पर साहसी, सक्षम व युवा कमाण्डर कॉमरेड राजू की कमी निश्चित रूप से खलेगी।

कॉमरेड राजू की मृत्यु से पीजीए ने एक जांबाज कमाण्डर गंवाया। जनता ने अपना एक प्यारा व निस्वार्थ नेता गंवाया। पार्टी ने एक समर्पित युवा कार्यकर्ता गंवाया। उनकी मृत्यु से दण्डकारण्य के आन्दोलन को, खासकर पीजीए को काफी नुकसान हुआ। लेकिन जनयुद्ध में ऐसी कुरबानियां देनी ही पड़ती हैं। जनयुद्ध का यह भी नियम है कि वह अपने नेताओं को तैयार भी कर लेता है। दण्डकारण्य के गौरवशाली इतिहास में कई योद्धाओं ने अपना खून बहाया है। लेकिन संघर्ष रुका नहीं, बल्कि आज वह मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद की लाल धारा को आत्मसात करके तेजी से व मजबूती से आगे बढ़ रहा है। कॉमरेड राजू दण्डकारण्य के उन 'पडियोरों' (संघर्षकारियों) का सच्चा वारिस था जिन्होंने ब्रितानी उपनिवेशवादियों की हुकूमत के खिलाफ बगावत का परचम फहराया था। कॉमरेड राजू ने एक उन्नत व नेक मकसद के लिए अपनी जान कुरबान कर दी। एक शोषणविहीन और समतामूलक समाज की स्थापना हेतु अपना जीवन समर्पित किया था। आज यह कर्तव्य हमारे कंधों पर है। आइए, हम कॉमरेड राजू को श्रद्धांजलि दें और उनके अधूरे मकसद को पूरा करने का संकल्प लें। ✸

(.... पृष्ठ 30 का शेष)

को अलग-अलग टुकड़ियों तक पहुंचाने में उनकी पहलकदमी व फुर्ती लाजवाब थीं। चाहे किसी भी हमले में उन्हें जो भी जिम्मेदारी दी गई उसे उन्होंने बिना किसी हिचकिचाहट के पूरा किया – यह उनकी खासियत भी थी।

गीदम पुलिस थाने पर हमला करने का फैसला लेने के बाद पार्टी ने कॉमरेड रामदास को टोही दल में शामिल किया। वह कई बार थाने की टोह लेने के लिए दस्ते से जाते-आते रहे। लेकिन अपने साथी कॉमरेडों से इस बारे में उन्होंने कभी कोई चर्चा नहीं की, पार्टी की फौजी गोपनीयता का उन्होंने निष्ठा के साथ पालन किया। एक अनुशासनबद्ध युवा कॉमरेड के रूप में पार्टी और पीजीए में उनकी अच्छी छवि रही। कॉमरेड रामदास एक उभरता हुआ नौजवान लाल फौजी थे। उनकी मृत्यु से पार्टी और पीजीए के लिए नुकसान हुआ है। हर संघर्ष नई कुरबानियों की मांग करता है। जहां संघर्ष होगा, वहां कुरबानी भी होगी। गीदम हमले को सफल बनाने के लिए पीजीए के लाल योद्धाओं ने अपनी जान की बाज़ी लगा दी। खतरों से खेलकर भी हमले को सफल बनाने का उनका संकल्प था। कॉमरेड रामदास ने भी इसी संकल्प के साथ हमले में भाग लिया। शत्रु के बलों का सफाया करके जनयुद्ध को आगे बढ़ाने के लक्ष्य से, दुश्मन के हथियारों को छीनकर जन सेना को मजबूत करने के इरादे से कॉमरेड रामदास ने जंगे मैदान में अपने प्राणों को न्यौछावर किया। आज वह हमारे बीच नहीं रहे। लेकिन उनकी बहादुरी, दृढ़ संकल्प, निस्वार्थ भावना – पीजीए के सैनिकों को प्रेरणा देते रहेंगी। कॉमरेड रामदास को 'दण्डकारण्य स्पेशल जोनल कमेटी' विनम्रतापूर्वक श्रद्धांजलि पेश करती है और उनके परिवार जनों के प्रति संवेदना व्यक्त करती है। इस मौके पर हमारी कमेटी जनता का आह्वान करती है कि इस शहीद योद्धा के अरमानों को पूरा करने के लिए पीजीए में सैकड़ों-हजारों की संख्या में भर्ती होकर जनयुद्ध को तेज करें। ✸

आतंकी सीआरपी बलों के साथ वीरतापूर्वक जूझते हुए अपने प्राणों को न्यौछावर करने वाले

पीजीए के जांबाज़ कमाण्डर कॉमरेड राजू (आयतू कुंजाम) को लाल सलाम !

प्रिय जनता !

28 अक्टूबर को नारायणपुर-अन्तागढ़ रोड पर पीजीए की उत्तर सब-जोनल कमाण्ड की अगुवाई में लाल योद्धाओं ने आतंकी और अत्याचारी सीआरपी बलों पर एक शानदार घात हमला किया। उस हमले में पीजीए की प्लटून-1 के कमाण्डर राजू ने क्रूर दुश्मन के खिलाफ बहादुराना लड़ाई लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त किया। 28 वर्षीय युवा कमाण्डर राजू ने अपनी कुरबानी से पीजीए और पार्टी की शान बढ़ा दी। उस दिन पीजीए ने सीआरपीएफ के वाहन को बारूदी सुरंग से उड़ा दिया था। उस तथाकथित माइनप्रूफ गाड़ी के चीथड़े उड़ गए थे और तीन जवान मौके पर ही मारे गए थे। कुछ अन्य घायल भी हुए थे। बाद में दुश्मन से हथियार छीनने के लिए छापामारों का एक सीजिंग ग्रुप आगे बढ़ा था जिसका नेतृत्व खुद कॉमरेड राजू कर रहे थे। उस ग्रुप ने दुश्मन से रायफल की कुछेक मैगजीनें वगैरह छीन भी ली थीं। लेकिन घायल दुश्मनों की ओर से उन्हें काफी प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। कॉमरेड राजू ने दुश्मनों का पूरी तरह से खात्मा करके मैदान साफ करने की पूरी कोशिश की। इस दरमियान उन्हें दुश्मन की गोली लग गई और वह मौके पर ही शहीद हो गए। पीजीए सैनिकों ने कॉमरेड राजू की लाश को उठा लाकर पूरे सम्मान और क्रान्तिकारी परम्पराओं के साथ उनका अन्तिम संस्कार किया। उन्होंने अपने आंसुओं को पोंछकर कॉमरेड राजू के सपनों को साकार बनाने की कसम खाई।

कॉमरेड राजू का जन्म दक्षिण बस्तर डिवीजन के किष्टारम रेंज ग्राम पालोड में हुआ था। वह एक गरीब परिवार में जन्मे थे। अपने माता-पिता की वह आखिरी संतान थे। उन्होंने अपने प्यारे बच्चे का नाम आयतू कुंजाम रखा। कॉमरेड आयतू का क्रान्तिकारी जीवन बाल संगठन के सदस्य के रूप में शुरू हुआ था। बचपन से ही वह पार्टी की नव जनवादी क्रान्ति की राजनीति से प्रभावित थे। जब कभी भी पार्टी का छापामार दस्ता उनके गांव जाता, तो वह हर बार दस्ते में भर्ती होकर पूर्णकालिक क्रान्तिकारी बनने की इच्छा जाहिर किया करते थे। बाद में जब वह 16 साल के हो गए, तब पार्टी ने उन्हें छापामार दस्ते में पूर्णकालिक सदस्य के तौर पर भर्ती करके उनकी ख्वाइश पूरी कर दी। तभी से वह जनता में राजू बन गए। वर्ग दुश्मन के प्रति उनमें काफी नफरत भरी होती थी। इसलिए वह जल्दी ही एक सैन्य योद्धा के रूप में उभरने लग गए। उन्हें बस्तर डिवीजन में पहली बार गठित विशेष छापामार दस्ते में सदस्य के रूप में लिया गया था। और पार्टी सदस्य भी बन गए। उन्होंने कई फौजी कार्यवाहियों में बहादुरी व पहलकदमी का उम्दा प्रदर्शन किया। बाद में 1995 में दण्डकारण्य में पहली बार प्लटून का गठन किया गया था जिसमें बस्तर और गड़चिरोली डिवीजनों के विशेष छापामार दस्तों को सम्मिलित किया गया था। इस तरह, कॉमरेड राजू अपनी पार्टी के इतिहास में बनी सबसे पहली प्लटून का सदस्य बन गए। 1999 में उन्हें प्लटून पार्टी कमेटी सदस्य और सेक्षन कमाण्डर के रूप में चुन लिया गया। पीजीए की स्थापना के बाद 2001 के अप्रैल में कुछ नई प्लटूनें बनाई गई थीं। कॉमरेड राजू को नवगठित प्लटून-5 का कमाण्डर चुन लिया गया। 2002 में उन्हें पीजीए की उत्तरी सब-जोनल कमाण्ड के सदस्य के रूप में पदोन्नति दी गई। पार्टी की जरूरतों के तहत, इस साल अप्रैल में उन्हें प्लटून-5 से फिर एक बार प्लटून-1 में स्थानान्तरित किया गया। प्लटून कमाण्डर के अलावा पार्टी की माड़ डिवीजनल कमेटी सदस्य के रूप में अतिरिक्त जिम्मेदारी भी उन्हें सौम्प दी गई।

प्लटून में रहकर उन्होंने पूरे दण्डकारण्य में अनेक फौजी कार्यवाहियों में भाग लिया। अनेक रेडों और ऐम्बुशों में उनका योगदान रहा। 1996 में राजनांदगांव जिले के मानपुर थाने पर किए गए सफल रेड में वह शामिल थे। उस थाने से करीब 30 हथियार और भारी मात्रा में गोलाबारूद *(शेष पृष्ठ 31 पर ....)*

हजारों पुलिस व अर्ध सैनिक बलों के पाशविक दमनचक्र, अत्याचारों और हत्याकाण्डों की परवाह न करते हुए

झूठे चुनाव का बहिष्कार करने वाले बस्तरवासियों का क्रान्तिकारी अभिनन्दन!